ISSN No. : 2456-2424

Emerging Research Journal

Vol. - 2 | Issue - 2 | December 2017

A Multi-Disciplinary International Research Journal

Emerging Research Journal is a high quality Journal devoted to the field of science, social science, education, commerce & Management. "Emerging research Journal" is an official Publication of the national society of Shiv Narayan Foundation. The Journal publisher original records, review articles, short communications, scientific survey, etc. Emerging Research Journal provides a forum for all above discipliner for development and research techniques and produces of laboratory investigations. It aims to Provide a highly readable and valuable addition to the literature which will serve as an indispensable reference for years to come. The Journal's core aims therefore, is to provide a platform for the researchers, scholars and research findings with the rest of the world there by facilitating informed decision which will improve society as a whole.

ISSN No. : 2456-2424 : December 2017

डॉ. फा.जी.वलन अरासु

प्राचार्य

संत अलॉयसियस महाविद्यालय

पेंटीनाका, सदर, जबलपुर

संदेश

समाज को दिशा देने और ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में नवीन सोपानों को प्राप्त करने में शोध की महती भूमिका रहती है। शोध परिकल्पना के बीज से प्रारंभ होकर किसी समस्या के चयन और फिर उसके निदान की अग्रसर होता है। यह अपने विविध पर्यायों जैसे खोज, अनुशीलन, परिशीलन तथा गवेषणा से संबंधित होकर न केवल बुद्धिजीवियों की तृषा को संतुष्ट करता है संतुष्ट करता है अपितु मानव-जीवन के कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

शोध के गुणवत्तामूलक प्रयोग किसी भी शैक्षणिक संस्थान की प्रगति के आँकलन का मूल मंत्र होते हैं। कोई भी समाज और राष्ट्र उत्कृष्टता के शिखर पर तभी पहुँच पाता है, जब उनका शोध निरंतर समय सापेक्ष एवं अद्यतन हो। ऐसे शोध पत्रों का संचयन कर उसे प्रकाशित करना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

मुझे यह जानकर अत्यंत हर्ष हुआ कि शोध क्षेत्र में अपना विशिष्ट योगदान प्रदान करते हुए जबलपुर पब्लिक कॉलेज द्वारा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर छ:माही शोध पत्रिका "Emerging Research Journal" का विगत कई वर्षों से सफलतापूर्वक प्रकाशन किया जा रहा है। इसके सफल प्रकाशन हेतु कॉलेज प्रबंधन एवं संपादक मंडल को बहुत-बहुत बधाई। "Emerging Research Journal" राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शोध-जगत् की नवीन ऊँचाइयों को प्राप्त करे, इस हेतु अनेक हार्दिक शुभकामनाएँ।

डॉ. फा.जी.वलन अरासु

PATRONS

Shri Praveen Verma
Director, Jabalpur Public College
Jabalpur, (M.P.)

Dr. Kapil Dev Mishra
Vice Chancellor, RDVV
Jabalpur (M.P.)

Dr. Balbir Singh
USA
bsingh1932@msn.com

Father G.V. Vazhan Arasu
Principal, St. Aloysius College,
Jabalpur (M.P.)

Shri Bhupendra Nigam
Councellor, Govt. College of
Educational Psychology, Jabalpur (M.P.)
9425161398

Prof. S.K. Mehta
03, Shivani Complex, Gupteshwar
Road, Madan Mahal, Jabalpur (M.P.)
0761-2420596

EDITOR IN CHIEF

Dr. G.S. Mishra

EDITOR

Dr. Nivedita Paul

MANAGING EDITORS

Dr. Chitranshi Verma **Dr. P.L. Mishra** **Dr. Shweta Pandey**
Smt. Meenakshi Shrivastava **Smt. Priyanka Tamrakar**

ADVISORY BOARD

Dr. K.M. Bhandarkar, Gondia (M.S.)
Dr. V.K. Gupta, Kurukshetra, (Haryana)
Dr. V.M. Shashi Kumar,
Thiruvananthapuram, Kerala
Prof. B.K. Sahoo, Dean Faculty of Education,
RDVV, Jabalpur (M.P.)
Dr. Damodar Jain, Bhopal (M.P.)
Dr. Sunil Pahwa, Jabalpur (M.P.)
Dr. Prem Khatri, Nepal
Dr. Arun Shukla, Jabalpur (M.P.)
Dr. Raina Tiwari, Jabalpur (M.P.)
Dr. Nilima Bhagwati, Assam
Dr. K.K. Sharma, Kurukshetra, (Haryana)
Dr. Alka Nayak, Ex. Vice Chancellor
RDVV, Jabalpur (M.P.)
Dr. Susamma Johnson,
Jabalpur (M.P.)
Dr. P. Pal Devnasan, Tamilnadu
Dr. S.D. Singh, Mathura (U.P.)
Dr. Ashutosh Dubey, Jabalpur (M.P.)
Dr. Bhawana Soneji, Jabalpur (M.P.)
Dr. Rashmi Singh, Jabalpur (M.P.)

DISCLAIMER

The authors are solely responsible for the contents of the papers compiled in this volume. The publishers, Editors in Chief and the members of the Editorial Board do not take any responsibility for the same in any manner. Errors, if any, are purely unintentional & readers are requested to communicate such errors to the editors or publishers to avoid discrepancies in future.

अनुक्रमणिका

क्र. पेज नं.

शिक्षा / Education

1. **श्रीमती पुष्पलता कोष्टा** 1–7
जबलपुर शहर के छात्रों एवं शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

2. **डॉ. दामोदर जैन** 8–14
अध्यापक शिक्षा एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता और मौजूदा व्यवस्था

3. **श्रीमती प्रियंका ताम्रकार** 15–19
जबलपुर शहर के स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले विद्यार्थियों की वाणिज्य विषय में उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

4. **डॉ. विनीता पाण्डेय** 20–26
व्यावसायिक निर्देशन एक समीक्षा

5. **श्रीमती दीपा परते** 27–31
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं पर स्वप्रत्यक्षीकरण एवं सामाजिक व्यवहार का अध्ययन

6. **प्रो. डॉ. शोभा सिंह** 32–36
शिक्षा का व्यावसायीकरण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

7. **श्रीमती प्रियंका साहू** 37–40
मूक–बधिर छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं समायोजन क्षमता का अध्ययन

8. **Dr. Nivedita Paul/Dr. Shweta Pandey** 41-44
IMPACT OF SOCIO-ECONOMIC STATUS ON VOCATIONAL ASPIRATION OF PHYSICALLY HANDICAPPED STUDENTS

9. **Smt. Alka Sharma** 45-49
EFFECTIVENESS OF MULTIMEDIA APPROACH ON ACHIEVEMENT IN SCIENCE AT UPPER PRIMARY LEVEL

दर्शनशास्त्र / Philosophy

10. **डॉ. प्रिया सोनीखरे / दिव्या मिश्रा** 50–55

विद्यार्थियों के सन्दर्भ में विपश्यना ध्यान की वर्तमान स्थिति (एक अवलोकन)

11. **डॉ. कैरोलिन अब्राहम** 56–59

बाईबल की नारियां – आधुनिक युग के संदर्भ में

अंग्रेजी साहित्य / English Literature

12. **Dr. Rashmi Singh** 60-62

ANITA DESAI'S CRY, THE PEACOCK : A PSYCHOLOGICAL STUDY

पुस्तकालय विज्ञान / Library Science

13. **Smt. Jaya Chaturvedi / Smt. Preeti Sahu** 63-68

ROLE OF DIGITAL LIBRARY IN HIGHER EDUCATION & ITS CHALLENGES

प्रबंधन / Management

14. **Dr. Sonali Dhawan** 69-74

EMERGING LEADERSHIP DYNAMICS IN TODAY'S CHANGING MANAGEMENT SCENARIO

सूचना प्रौद्योगिकी / Information Technology

15. **Smt. Anjulata Yadav** 75-81

WOMEN EMPOWERMENT AND ICT EDUCATION

जबलपुर शहर के छात्रों एवं शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

श्रीमती पुष्पलता कोष्टा *

शोध सार

प्रस्तुत शोध पत्र में जबलपुर शहर के छात्रों एवं शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया गया। इस हेतु जबलपुर शहर के विद्यालयों के उच्चतर माध्यमिक स्तर के 150 छात्रों एवं 50 शिक्षकों को यादृच्छिक रूप से चयनित किया गया। प्रो. डॉ. एन.एन. श्रीवास्तव एवं डॉ. शशिप्रभा दुबे द्वारा निर्मित ''पर्यावरणीय अभिवृत्ति मापनी'' का उपयोग किया। आंकड़े स्वयं शोधकर्त्री द्वारा अपने अध्ययन से संबंधित परिकल्पना के परीक्षण के लिए संकलित किये गये है। प्राप्त आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण मध्यमान, प्रमाणिक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात के माध्यम से ज्ञात किया गया। पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति विज्ञान, कला व साहित्य के छात्रों व शिक्षकों में अध्ययनरत् मध्यमानों के मानों के आधार पर तुलना करने पर निष्कर्ष प्राप्त होता है कि विज्ञान विषय के छात्रों व शिक्षकों की अभिवृत्ति अधिक है।

आज सम्पूर्ण विश्व इन पर्यावरणीय समस्याओं के भयावह परिणामों से चिंतित है आज विश्व का कोना–कोना पर्यावरणीय समस्याओं के कारण असुरक्षित होता जा रहा है कई प्रकार के प्रदूषण जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आदि प्रदूषणों कारण आज हमारा भविष्य खतरे में आ गया है। पर्यावरणीय समस्या के प्रति जनमानस का ध्यान आकर्षित कराने तथा पर्यावरणीय समस्या को हल करने की दिशा में पर्यावरण शिक्षा एक नवीन कदम है। जिसके द्वारा जनता को जागरूक बनाने का कार्य किया जा सकता है।

डगलस व ह्यालैण्ड के अनुसार – ''पर्यावरण शब्द का प्रयोग उन सब बाह्य शक्तियों प्रभावों तथा दशाओं के सामूहिक रूप से वर्णन करने हेतु किया जाता है, जो जीवित प्राणियों के जीवन, स्वभाव व्यवहार, बुद्धि विकास और परिपक्वता का प्रभाव डालते है।

ऑक्सफोर्ड एडबांस्ड लर्नस डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश के अनुसार ''प्रदूषण'' शब्द का आशय ''प्रदूषण यानि की शुद्धता और शुचिता को नष्ट करना।''

दूसरे शब्दों में भूमि, वायु एवं जल आदि के भौतिक, रासायनिक, जैविक गुणों में ऐसा परिवर्तन होता है जो पृथ्वी पर जीवन के लिये घातक हो तो उसे प्रदूषण की संज्ञा दे सकते है।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 के अनुसार ''पर्यावरण प्रदूषण में ऐसा ठोस, द्रव्य या गैसीय पदार्थ अभिप्रेत है जो ऐसी सान्द्रता में विद्यमान है कि पर्यावरण के लिए हानिकारक हो सकता है तथा जिसका हानिकारक होना संभव है।''

इन्टरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशियल सांइसेज (1968) के अनुसार– पर्यावरण को ''जीवन और एक सावयव (जीव) के विकास को प्रभावित करने वाली सभी बाह्य दशाओं और प्रभावों की समग्रता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

*** जबलपुर पब्लिक कॉलेज, करमेता, जबलपुर (म.प्र.)**

शोध की आवश्यकता एवं महत्व :- प्रस्तुत शोध विषय अत्यंत नवीन विषय है और इस प्रकार के शोध कार्यक्रमों को शिक्षा के माध्यम से करना आज के समय की आवश्यकता भी है क्योंकि आज पर्यावरणीय समस्याएं दिन-प्रतिदिन आकार एवं जटिलता में बढ़ती जा रही है। सजीवों और निर्जीवों दोनों पर पर्यावरण-प्रदूषण का कुप्रभाव पड़ता है। मीनमाता की खाड़ी की मछलियाँ खाने से एक साथ हजारों व्यक्तियों कालकबलित हो जाते है तो इटली की मूर्तियाँ वर्षा जल से क्षतिग्रस्त हो जाती है। आगरा के ताजमहल एवं यमुना पर मथुरा के तेलशोधक संयंत्रों से उत्पन्न प्रदूषण का कुप्रभाव पड़ता है तो भोपाल के यूनियन कार्बाइड के संयंत्र 'मिक' के रिसाब के परिणाम स्वरूप हजारों व्यक्ति मर जाते है, लाखों दुष्प्रभावित हो जाते है।

(1) 2009 का मानसून 1972 तक के मानसून से सबसे गर्म रहा है। अत: आज न केवल वैज्ञानिकों शिक्षाविदों और बुद्धिजीवी वर्ग को बल्कि प्रत्येक जनसाधारण का इन संकटों के समाधान के विषय में विचार करने कार्य करने की आवश्यकता है और इसी आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुये मैंने अपने शोध प्रबंध के द्वारा विभिन्न विद्यार्थियों एवं शिक्षकों पर अध्ययन किया है। क्योंकि पर्यावरण बेहतर तभी बन सकता है जब सामान्य व्यक्ति व्यक्तिगत स्तर पर अपने तथा अपने आस-पास के पर्यावरण की छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने लगे तो यह पर्यावरण सुरक्षा के क्षेत्र में एक बड़ा योगदान होगा। इस समय आवश्यकता है लोगों को इस संबंध में जागरूक बनाने की जिससे मनुष्य अपनी संस्कृति और जैव भौतिक परिवेश के मध्य स्वयं की समबद्धता को पहचानें और समझने के लिए आवश्यक कौशल तथा अभिवृत्ति का विकास कर सके और इस कार्य में सबसे मददगार हो सकती है शिक्षा'',

(2) अत: आज पर्यावरणीय अभिवृत्ति के विकास के लिए शिक्षा के माध्यम से लोगों को इस दिशा में प्रबुद्ध बनाना एक अनिवार्य आवश्यकता है। जिससे मनुष्य संरक्षण को अंगीकार कर सके अपने नगरों, ग्रामों तथा सभी अन्य सार्वजनिक स्थलों की स्वच्छता तथा सुंदरता का दायित्व सरकार पर नगर पालिकाओं पर या अन्य ऐसे ही प्राधिकरणों पर नहीं छोड़ा जा सकता है। बल्कि इस दिशा में हमें व्यक्तिगत प्रयास करने होंगे और व्यक्तिगत प्रयास तभी संभव होंगे जब प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति जागरूक हो।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शीर्ष पृथ्वी सम्मेलन, पृथ्वी दिवस, विश्व पर्यावरण दिवस आदि सभी इस संदर्भ में आयोजित किये जाते है। संयुक्त राष्ट्र का पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) आधुनिक समाज की चुनौतियों से संबंधित कमेटी (CCMM) यूनेस्कों का मनुष्य तथा वैध मण्डल कार्यक्रम विश्व वन्यजीव कोप आदि अंतर्राष्ट्रीय संगठन इस दिशा में कार्य कर रहे है।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुये शोधार्थी के मन में जबलपुर शहर के छात्रों एवं शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन उच्चतर माध्यमिक स्तर के विज्ञान कला संकाय व वाणिज्य विषय के छात्रों व शिक्षकों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता महसूस हुई।

परिकल्पनाएं :-

(1) विज्ञान तथा वाणिज्य के छात्रों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

(2) विज्ञान तथा कला संकाय के छात्रों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

(3) वाणिज्य तथा कला संकाय के छात्रों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

(4) विज्ञान तथा वाणिज्य के शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

(5) विज्ञान तथा कला संकाय के शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

(6) वाणिज्य तथा कला संकाय के शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि :- प्रस्तुत शोध हेतु आदर्शात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श :-

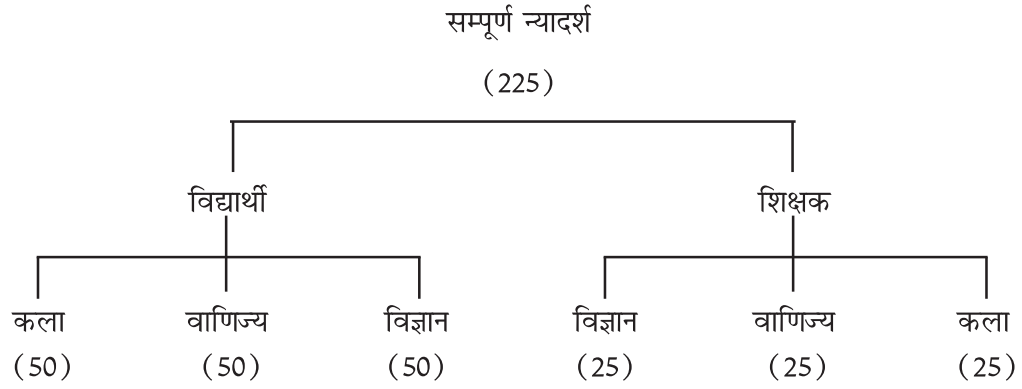

चर :-

1. स्वतंत्र चर- पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति।
2. आश्रित चर- जबलपुर शहर के विद्यार्थी एवं शिक्षक।

उपकरण:-

परीक्षण - डॉ. एन.एन. श्रीवास्तव एवं कु. शशिप्रभा दुबे द्वारा निर्मित ''पर्यावरणीय अभिवृत्ति मापनी''

प्रयुक्त सांख्यिकी :- मध्यमान, मानक विचलन, क्रांतिक अनुपात।

सीमांकन :-

1. केवल जबलपुर शहर।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं शिक्षक।
3. 16-18 वर्ष छात्र 24-45 शिक्षक वर्ष आयु सीमा।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

तालिका 1.1

विज्ञान विषय तथा वाणिज्य विषय के छात्रों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति के प्राप्तांकों के मध्यमानों में सार्थकता संबंधी तालिका

क्र.	कुल संख्या	समूह	मध्यमान	मानक विचलन	मानकत्रुटि	CR-मूल्य	च्मान
1	50	विज्ञान	65.00	11	1.88	0.69	<0.05
2	50	वाणिज्य	63.70	7.55			

स्वतंत्रता का अंश =98 सार्थकता स्तर 0.05 पर मान=1.98

तालिका क्रमांक 1.1 के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विज्ञान तथा वाणिज्य के छात्रों के पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति का CR मूल्य 98 पदों के लिए 0.05 स्तर पर 1.98 पाया गया है जबकि गणना करने पर CR मूल्य 0.69 पाया गया जो 0.5 स्तर पर सार्थक नहीं है। विज्ञान समूह व वाणिज्य समूह के छात्रों में पर्यावरणीय अभिवृत्ति में सार्थक अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता है।

तालिका 1.2

विज्ञान तथा कला संकाय के छात्रों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति के प्राप्तांकों के मध्यमानों में सार्थकता संबंधी तालिका

क्र.	कुल संख्या	समूह	मध्यमान	मानक विचलन	मानकत्रुटि	CR-मूल्य	P मान
1	50	विज्ञान	65.00	11.00	1.63	2.14	>0.05
2	50	कला संकाय	68.50	3.45			

स्वतंत्रता का अंश =98 सार्थकता स्तर 0.05 पर मान=1.98

तालिका क्रमांक 1.2 के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विज्ञान तथा कला संकाय के छात्रों के पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति का CR मूल्य 98 पदों के लिए 0.05 स्तर पर 1.98 पाया गया है जबकि गणना करने पर CR मूल्य 2.14 पाया गया जो 0.05 स्तर के मान से अधिक है। अत: दोनों समूहों में सार्थक अंतर दृष्टिगोचर होता है।

तालिका 1.3

वाणिज्य तथा कला संकाय के छात्रों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति के प्राप्तांकों के मध्यमानों में सार्थकता संबंधी तालिका

क्र.	कुल संख्या	समूह	मध्यमान	मानक विचलन	मानकत्रुटि	CR-मूल्य	P मान
1	50	वाणिज्य	63.70	7.55	1.17	4.08	>0.05
2	50	कला संकाय	68.50	3.45			

स्वतंत्रता का अंश =98 सार्थकता स्तर 0.05 पर मान=1.98

तालिका क्रमांक 1.3 के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वाणिज्य तथा कला संकाय के छात्रों के पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति के प्राप्तांकों का CR मूल्य 98 पदों के लिए 0.05 स्तर पर 1.98 पाया गया है जबकि गणना करने पर CR मूल्य 4.08 पाया गया जो 0.05 स्तर के मान से अधिक है। अत: वाणिज्य तथा कला संकाय के छात्रों की पर्यावरणीय समस्याओं की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर दृष्टिगोचर होता है।

तालिका 1.4

विज्ञान विषय तथा वाणिज्य विषय के शिक्षकों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति के प्राप्तांकों के मध्यमानों में सार्थकता संबंधी तालिका

क्र.	कुल संख्या	समूह	मध्यमान	मानक विचलन	मानकत्रुटि	CR-मूल्य	P मान
1	25	विज्ञान	76.16	2.28	0.754	0.75	>0.05
2	25	वाणिज्य	74.84	3.006			

स्वतंत्रता का अंश =48 सार्थकता स्तर 0.05 पर मान=2.01

तालिका क्रमांक 1.4 के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विज्ञान तथा वाणिज्य के शिक्षकों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति का CR मूल्य 48 पदों के लिए 0.05 स्तर पर 2.01 पाया गया है जबकि गणना करने पर CR मूल्य 0.75 पाया गया जो 0.05 स्तर के मान से अधिक है। अत: विज्ञान व वाणिज्य विषय के शिक्षकों की पर्यावरणीय अभिवृत्ति में सार्थक अंतर दृष्टिगोचर होता है।

तालिका 1.5

विज्ञान तथा कला संकाय के शिक्षकों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति के प्राप्तांकों के मध्यमानों में सार्थकता संबंधी तालिका

क्र.	कुल संख्या	समूह	मध्यमान	मानक विचलन	मानकत्रुटि	CR-मूल्य	P मान
1	25	विज्ञान	74.84	3.006	0.48	5.06	<0.05
2	25	कला संकाय	71.68	0.86			

स्वतंत्रता का अंश =48 सार्थकता स्तर 0.05 पर मान=2.01

तालिका क्रमांक 1.5 के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विज्ञान तथा कला संकाय के शिक्षकों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति का CR मूल्य 48 पदों के लिए 0.05 स्तर पर 2.01 पाया गया है जबकि गणना करने पर CR मूल्य 5.06 पाया गया जो 0.05 स्तर के मान से अधिक है। अत: विज्ञान व कला संकाय के शिक्षकों की पर्यावरणीय अभिवृत्ति में सार्थक अंतर दृष्टिगोचर होता है।

तालिका 1.6

वाणिज्य तथा कला संकाय के शिक्षकों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति के प्राप्तांकों के मध्यमानों में सार्थकता संबंधी तालिका

क्र.	कुल संख्या	समूह	मध्यमान	मानक विचलन	मानकत्रुटि	CR-मूल्य	P मान
1	25	वाणिज्य	74.84	3.006	0.62	5.06	<0.05
2	25	कला संकाय	71.68	0.86			

स्वतंत्रता का अंश =48 सार्थकता स्तर 0.05 पर मान=2.01

तालिका क्रमांक 1.6 के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वाणिज्य तथा कला संकाय के शिक्षकों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति का CR मूल्य 48 पदों के लिए 0.05 स्तर पर 2.01 पाया गया है जबकि गणना करने पर CR मूल्य 5.06 पाया गया जो 0.05 स्तर के मान से अधिक है। अत: वाणिज्य व कला संकाय के शिक्षकों की पर्यावरणीय अभिवृत्ति में सार्थक अंतर दृष्टिगोचर होता है।

परिकल्पनाओं का सत्यापन :-

परिकल्पना 1- विज्ञान तथा वाणिज्य के छात्रों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

सत्यापन - तालिका 1.1 से स्पष्ट है कि विज्ञान तथा वाणिज्य के छात्रों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में 0.05 पर सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: परिकल्पना मान्य होती है।

परिकल्पना 2 - विज्ञान तथा कला संकाय के छात्रों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

सत्यापन - तालिका 1.2 से स्पष्ट है कि विज्ञान तथा कला संकाय के छात्रों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में 0.05 पर सार्थक अंतर पाया गया। अत: परिकल्पना मान्य नहीं होती है।

परिकल्पना 3 - वाणिज्य तथा कला संकाय के छात्रों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

सत्यापन - तालिका 1.3 से स्पष्ट है कि वाणिज्य तथा कला संकाय के छात्रों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में 0.05 पर सार्थक अंतर पाया गया। अत: परिकल्पना मान्य नहीं होती है।

परिकल्पना 4 - विज्ञान तथा वाणिज्य के शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर है।

सत्यापन - तालिका 1.4 से स्पष्ट है कि विज्ञान तथा वाणिज्य के शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में 0.05 पर सार्थक अंतर पाया गया। अत: परिकल्पना मान्य नहीं होती है।

परिकल्पना 5 - विज्ञान तथा कला संकाय के शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

सत्यापन - तालिका 1.5 से स्पष्ट है कि विज्ञान तथा कला संकाय के शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में 0.05 पर सार्थक अंतर पाया गया। अत: परिकल्पना मान्य नही होती है।

परिकल्पना 6 - वाणिज्य तथा कला संकाय के शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

सत्यापन - तालिका 1.6 से स्पष्ट है कि वाणिज्य तथा कला संकाय के शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति में 0.05 पर सार्थक अंतर पाया गया। अत: परिकल्पना मान्य नहीं होती है।

निष्कर्ष :-

1. विज्ञान विषय के छात्रों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति मध्यमान के मान के आधार पर देखने पर निष्कर्ष प्राप्त होता है कि विज्ञान के छात्र पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति ज्यादा सचेत है। (तालिका 1.1)

2. वाणिज्य विषय के छात्रों की पर्यावरणीय अभिवृत्ति मध्यमान के मान के आधार पर देखने पर निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वाणिज्य के छात्र पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अधिक सचेत है। (तालिका 1.2)

3. कला संकाय विषय के छात्रों की पर्यावरणीय अभिवृत्ति मध्यमान के मान के आधार पर देखने पर निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कला संकाय के छात्र पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अधिक सचेत है। (तालिका 1.3)

4. विज्ञान विषय के शिक्षकों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति मध्यमान के मान के आधार पर देखने पर निष्कर्ष प्राप्त होता है, विज्ञान के शिक्षकों की पर्यावरण समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति अधिक पाई गई है।(तालिका 1.4)

5. वाणिज्य विषय के शिक्षकों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति मध्यमान के आधार पर देखने पर निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वाणिज्य के शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति अधिक पाई गई है। (तालिका 1.5)

6. कला संकाय के शिक्षकों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति मध्यमान के आधार पर देखने पर निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कला संकाय के शिक्षकों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति ज्यादा पाई गई। (तालिका 1.6)

शोध से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विज्ञान विषय के छात्रों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति मध्यमान के मान के आधार पर देखने पर निष्कर्ष प्राप्त होता है कि विज्ञान के छात्र पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति ज्यादा सचेत है।

विज्ञान विषय के शिक्षकों की पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति मध्यमान के मान के आधार पर देखने पर निष्कर्ष प्राप्त होता है कि विज्ञान के शिक्षकों में पर्यावरण समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति अधिक पाई गई है।

संदर्भ ग्रंथ :-

- बुच. एम. बी.: थर्ड एण्ड फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन सोसायटी फॉर ऐजुकेशन रिसर्च एण्ड डेबलपमेण्ट, बड़ौदा 1973–78, 1983–88
- कपिल, एच. के.: अनुसंधान विधियाँ एच. पी. ए. बुक हाऊस, आगरा, 1998–99
- कपिल, हंस कुमार, : ''अनुसंधान की विधियाँ'' तीसरा संस्करण भार्गव पुस्तक प्रकाशन आगरा
- गैरेट हेनरी ई.: शिक्षा एवं मनोविज्ञान संख्यिकी, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना, 1982
- रघुवंशी, अरूण एवं रघुवंशी चंद्रलेखा: ''पर्यावरण प्रदूषण'' चतुर्थ संस्करण, म.प्र. हि. ग्र. अ. भोपाल 1990
- राय, पारस नाथ : ''अनुसंधान परिचय'' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगर
- श्रीकांत केशव : पर्यावरण रसायन, प्रथम संस्करण म.प्र. हि. ग्र. अ. भोपाल, 1994

अध्यापक शिक्षा एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता और मौजूदा व्यवस्था

*डॉ. दामोदर जैन **

शोध सार

अध्यापक शिक्षा पर सर्वत्रविचार मंथन जारी है। राष्ट्रीय स्तर पर मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय सहित सभी शैक्षिक संस्थाएँ, शिक्षा से जुड़े शासकीय और गैर सरकारी संगठनों सहित औद्योगिक घराने भी अब अध्यापक शिक्षा में रूचि प्रकट कर रहे हैं। विचार के स्तर पर तो यह स्थिति श्रेष्ठतम नजर आती है लेकिन कार्य और उसके परिणामों से अभी कोई भी संतुष्ट नजर नहीं आता। जिन प्रशिक्षण संस्थाओं मे अध्यापक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं उनका वातावरण बहुत ज्यादा प्रभावी नहीं हैं। वर्ष 2008 में ज्ञान आयोग के प्रतिवेदन में स्पष्ट लिखा गया था कि ''अभी भी देश में योग्य और प्रेरित शिक्षकों की बहुत कमी बनी हुई है।'' आयोग के अध्यक्ष सैम पित्रौदा ने देशभर में शिक्षक-प्रशिक्षकों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत बताई थी। नई शिक्षा नीति 1986 और इसकी कार्ययोजना 1992 में भी शिक्षक प्रशिक्षण को प्रभावी और परिणाम मूलक बनाने की जोरदार सिफारिश की गई थी।

एनसीईआरटी द्वारा वर्ष 2005 में तैयार किए गए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप 2005 के अनुसार – ''**वास्तव में हमें चिंतनशील शिक्षकों की आवश्यकता है। ऐसे शिक्षक जो बच्चों की वास्तविक अपेक्षाओं को मनोयोग पूर्वक पूरा कर सकें।**'' शिक्षा अधिकार कानून 2009 में भी जिस तरह की अपेक्षाएँ शिक्षकों से की गई है उन्हें पूरा करने वाले शिक्षकों की पूर्ति प्रभावी शिक्षक-प्रशिक्षण से ही संभव हो सकती है, अत: अब हमें शिक्षक प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता :- यह स्पष्ट है कि अब स्कूलों में पढ़ाने वाले शिक्षकों का प्रशिक्षित होना उसी तरह अनिवार्य मान लिया गया है, जिस तरह देश के न्यायालयों में अधिवक्ताओं, चिकित्सालयों में चिकित्सकों और निर्माण सम्बन्धी कार्यों में अभियन्ताओं सहित प्रबन्धन कार्यों में प्रबन्धन सम्बन्धी प्रशिक्षण प्राप्त करना अनिवार्य माना गया है।

यह सर्वमान्य है कि किसी भी पाठ्यचर्या की सफलता अंतत: कक्षा में पढ़ाने वाले शिक्षकों पर निर्भर होती है। अत: यह आवश्यक है कि शिक्षक अपनी भूमिका को भली भांति निभाएँ। एक अच्छा शिक्षक वह है जो कक्षा शिक्षण के दौरान बच्चों के लिए सीखने की परिस्थितियों का निर्माण करता है और प्रत्येक बच्चे को सीखने की प्रक्रिया में सहभागी होने का अवसर देता है। वह बच्चों को सक्रिय गतिविधियों के माध्यम से स्वयं करके तथा एक दूसरे से सीखने को प्रेरित करता है।

ऐसे गुणों और व्यवहारों से युक्त शिक्षक ही अपने उत्तरदायित्वों का ठीक से पालन करते हुए, बच्चों को गुणवत्ता युक्त शिक्षा उपलब्ध करा सकते हैं। एक अभिप्रेरित शिक्षक, अपने कक्षा-शिक्षण व्यवहार को समय की पाबंदी, नियमितता, समानता, कर्तव्यनिष्ठा, अनुशासन, और सामाजिक संबंध के माध्यम से बेहतर बना सकता है। हमारे वर्तमान शिक्षक-प्रशिक्षणों की प्रमुख समस्याओं और चुनौतियों को व्यवस्थित ढ़ग से समझने और उनका समाधान करने की आज महती जरूरत है ताकि सभी शिक्षक सभी बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार सुनिश्चित कर सकें।

शिक्षा की गुणवत्ता के परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा की प्रभाविता सर्वत्र स्वीकार्य है। यह अनुभूत सत्य है कि जैसी

***पूर्व सदस्य एन.सी.ई.आर.टी संप्रति: राज्य शिक्षा केन्द्र म.प्र. भोपाल**

अध्यापक शिक्षा होगी अर्थात शिक्षकों का प्रशिक्षण होगा वैसा ही कक्षाओं में शिक्षण होगा। जैसा प्रशिक्षण – वैसा शिक्षण, ऐसा यथार्थ है जिसे सबने सही माना है। इसीलिए अध्यापक शिक्षा पर अब विशेष ध्यान दिया जा रहा है। भारत सरकार के लिए अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की स्थापना के बाद वर्ष 2012 में अध्यापक शिक्षा मिशन बनाया गया है। अब देश भर में एनसीटीई द्वारा स्थापित मापदण्डों के अनुरूप ही अध्यापक शिक्षा संस्थान कार्य कर रहे हैं।

अध्यापक शिक्षा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :- हमारे देश में अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम वैदिक काल के गुरूकुलों में प्रारम्भ हुआ था जहाँ पिता अपने पुत्र को प्रशिक्षित कराता था। बाद में कुछ परिवर्तनों के साथ गुरूकुलों की व्यवस्था को बौद्ध एवं जैनों ने भी ग्रहण किया। अंग्रेजों के आगमन के साथ ही मैकाले ने स्कूली शिक्षा और अध्यापक शिक्षा में नया मोड़ लाने का निर्णय लिया। इस प्रकार अंग्रेजी सरकार द्वारा भारत में एक विदेशी अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम की शुरूआत की गई। 1882 में गठित भारतीय शिक्षा आयोग ने अध्यापक शिक्षा के बारे में दिशा निर्देश जारी किए। 1904 की शिक्षा नीति तैयार करते हुए लॉर्ड कर्जन ने अध्यापक शिक्षा में सुधार के अनेक ठोस सुझाव दिए। 1929 में गठित हर्टाग कमेटी ने भी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए महत्वपूर्ण अनुसंशाएँ कीं। अंग्रेज शिक्षाविद सर जॉन सारजेण्ट की अध्यक्षता में 1944 में गठित सारजेण्ट कमेटी ने अध्यापकों की शिक्षा के लिए विस्तृत और व्यापक रिपोर्ट प्रस्तुत की।

स्वतंत्र भारत में अध्यापक शिक्षा व्यवस्था अंग्रेज कालीन अध्यापक शिक्षा में बिना पर्याप्त सुधार किए ही स्वीकार कर ली गई। 1948 में गठित विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग एवं 1952 में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में विशिष्ट सुझाव दिए। शिक्षा आयोग 1964 ने शिक्षकों की व्यावसायिक तैयारी को शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए महत्वपूर्ण मानते हुए अभ्यास शिक्षण एवं सेवारत प्रशिक्षण को अधिक महत्व दिया। 1968 में देश में पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी और इसमें अध्यापक शिक्षा को व्यवस्थित और तर्क संगत बनाने का सुझाव दिया गया। एनसीईआरटी और क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों के कार्यों की समीक्षा उपरांत शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय आयोग (चट्टोपाध्याय आयोग) बना, जिसमें शिक्षकों के साथ – साथ अध्यापक शिक्षा की समस्याओं के बारे में गहराई से अध्ययन कर अध्यापक शिक्षा की विषय वस्तु, प्रशिक्षण की समयावधि में वृद्धि सहित प्रायोगिक कार्य की समृद्धि सम्बन्धी अनुसंशाएँ कीं। 1986 में देश की संसद में पहली बार एक पूर्ण दिवस शिक्षा पर बहस उपरांत राष्ट्रीय शिक्षा नीति तैयार की, जिसमें अध्यापक शिक्षा की निरन्तरता हेतु स्थाई शैक्षिक संरचना सुझाई गई। उस समय प्रचलित अध्यापक शिक्षा संस्थानों को प्रोन्नत करते हुए डाइट, सी. टी. ई. तथा आई. ए. एस. ई. स्थापित किए गए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सेवारत तथा सेवापूर्व अध्यापक शिक्षा को समृद्ध करने पर बल दिया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा उपरांत नीति को क्रियान्वित किए जाने के लिए क्रियान्वयन कार्यक्रम 1992 तैयार किया गया।

एनसीएफ 2005 के अध्याय 5 व्यवस्थागत सुधार में पाठ्यचर्या नवीकरण के लिए शिक्षक शिक्षा सम्बन्धी बदलाव किए जाने हेतु अनेक अनुसंशाएँ की गई हैं। दस्तावेज में कहा गया है कि प्रचलित शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में न तो नए विचारों को संदर्भ में लिया जाता है न ही स्कूल और समाज से जुड़े मुद्दों की उसमें चर्चा हो पाती है। शिक्षक प्रशिक्षणों में ज्ञान को ''प्रदत्त'' की तरह बिना सवाल उठाए पाठ्यचर्या में बाँध दिया जाता है। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों का न तो शिक्षक विद्यार्थियों द्वारा परीक्षण किया जाता है और न ही वहाँ के अन्य शिक्षकों के द्वारा। अधिकतर प्रशिक्षण कार्यक्रम विद्यार्थियों को अपने अनुभवों को अभिव्यक्ति के अवसर नहीं देते। इसी दस्तावेज में प्रस्तावित किया गया है कि प्रशिक्षण

की गुणवत्ता का एक बड़ा मानक है – शिक्षक के लिए उसकी प्रासंगिकता। अभी अधिकांश कार्यक्रमों में भाषण आधारित अधिगम अपनाया जाता है, जिसमें प्रशिक्षुओं को भागीदारी करने का मौका नहीं मिलता है। विडंबना ये है कि गतिविधि आधारित शिक्षा, बड़ी कक्षाओं का प्रबन्धन, बहुस्तरीय और बहुश्रेणीय शिक्षा और सामूहिक शिक्षण जैसे विषय, जिन्हें करके दिखाने की जरूरत है, उन्हें भी भाषणों द्वारा पढ़ाया जाता है। स्कूल अनुवर्तन की शुरूआत भी नहीं हो सकी है और संकुल स्तर की बैठकें ऐसे पेशेवर मंचों के रूप में विकसित नहीं हो सकी हैं, जहाँ शिक्षक साथ बैठें, चिंतन करें और एक साथ योजना बनाएँ।

अध्यापक शिक्षा का महत्व :- अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2009 में कहा गया है कि ''हमें ऐसे शिक्षकों की जरूरत है जो बच्चों की परवाह करें और उन्हे प्यार दें। बच्चों को सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक संदर्भ में समझे, उनकी समस्याओं और आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशीलता विकसित करें। सभी बच्चों से समान व्यवहार करें। बच्चों को मात्र ज्ञान प्राप्त करने वाला नहीं समझे बल्कि स्वाभाविक रूप से बच्चों को सिखाऐं और शिक्षक अधिगम प्रक्रिया को आनंददायी सहभागितापूर्ण और अर्थपूर्ण बनाएँ। ज्ञान को कोई प्रदान करने वाली वस्तु ना समझे बल्कि बच्चों की सामाजिक व व्यक्तिगत् वास्तविकाओं को अकादमिक अधिगम के साथ अंतर्निहित करें। पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यचर्या का समालोचनात्मक मूल्यांकन करे तथा स्थानीय ज्ञान को पाठ्यचर्या से जोड़े।''

प्रसिद्ध शिक्षाविद् मर्मर मुखोपाध्याय के अनुसार ''**शिक्षक का व्यवहार विद्यार्थी की संतुष्टि के लिए महत्वपूर्ण मानदण्ड होता है, और यही अधिकांशत: पहचान के बिना रह जाता है।**'' असंतुष्ट शिक्षक कभी भी अच्छा नहीं पढ़ा सकता और न ही वह विद्यार्थियों को चरित्रवान बना सकता है, क्योंकि यह उत्तरदायित्व निभाने का मामला है। यदि हम विद्यार्थियों के समग्र विकास के लिए कार्य करना चाहते हैं, तो हमें शिक्षक के महत्व पर भी बल देना चाहिए। शिक्षक को हमेशा जागरूक, सुसंस्कृत, स्वतन्त्र और यथार्थवादी होना चाहिए तभी वह शिक्षित विद्यार्थी बनाने का वास्तविक प्रयास कर सकता है। जैसे:-जिस शिक्षक ने अपना शारीरिक विकास न किया हो, वह भला विद्यार्थी को शारीरिक विकास करने में मदद कैसे कर सकता है? जिस शिक्षक का स्वयं का मानसिक विकास अवरूद्ध हो गया हो, वह विद्यार्थी का मानसिक विकास करने में सफल नहीं हो सकता।जो शिक्षक भवनात्मक रूप से स्वयं कमजोर है, वह विद्यार्थियों को भावनात्मक रूप से परिपक्व नहीं बना सकता। जो शिक्षक स्वयं बौद्धिक रूप से सक्रिय नहीं है, वह अपने विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास में सहयोगी नहीं हो सकते। जो स्वयं नैतिक रूप से परिपक्व नहीं हो रहा है, वह अपने विद्यार्थियों में उच्च नैतिक मापदण्डों को स्थापित नहीं कर सकता। अत: अध्यापक शिक्षा के जरिए शिक्षकों के सतत विकास के लिए ऐसा प्रतिमान तय किया जाना चाहिए जिसमें उनके समग्र विकास का वातावरण बने।

अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य :-

हमारे देश में अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रम अनेक स्तरों पर प्रचलित हैं। अध्यापक शिक्षा के उद्देश्यों के अंतर्गत शिक्षकों की शिक्षण के प्रति अंतर्दृष्टि एवं दूरदृष्टि विकसित करने के साथ साथ निम्नांकित उद्देश्य रखे जा सकते हैं:-

1. शिक्षकों को व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं का ज्ञान कराना और उन सबकी प्राप्ति के लिए तैयार करना।
2. शिक्षकों को विभिन्न आयुवर्ग के छात्रों के मनोविज्ञान का ज्ञान कराना और उनके साथ तदनुकूल व्यवहार विधियों में प्रशिक्षित करना।
3. शिक्षकों को विद्यालयों में आयोजित होने वाली पाठ्य सहगामी क्रियाओं के संचालन हेतु सक्षम बनाना।

4. शिक्षकों को कक्षा प्रबन्धन कला और विद्यालय संगठन की संचालन क्रियाओं में दक्ष कराना।
5. शिक्षकों में शैक्षिक समस्याओं को समझने और उन्हें हल करने की अन्तर्दृष्टि और दूरदृष्टि विकसित करना।

नए संदर्भ में अध्यापक शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य इस प्रकार निर्धारित किए गए हैं:-

1. भारतीय संविधान द्वारा स्थापित वचनबद्धता को प्राप्त करने के लिए शिक्षकों को सशक्त बनाना।
2. शिक्षकों को राष्ट्र निर्माण के कार्यक्रमों में क्रियाशीलता से भाग लेने, आर्थिक विकास को गति देने, आधुनिकीकरण तथा सामाजिक परिवर्तनों एवं राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने योग्य बनाना।
3. शिक्षकों को भारतीय समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समाज की वास्तविकताओं तथा इसकी समाहारक सांस्कृतिक विरासत से जोड़ना।
4. शिक्षकों को अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2009 में प्रस्तुत शैक्षिक विषमताओं को समझने और उन्हें दूर करने हेतु संश्लेषण करने में सक्षम बनाना।
5. शिक्षकों को शिक्षा के सिद्धान्त और व्यवहार के मध्य समन्वय करने में सक्षम बनाना।
6. शिक्षकों को देश में व्याप्त सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध वातावरण बनाने तथा स्वयं ईमानदार होने के लिए प्रोत्साहित होना।

विगत कुछ वर्षों के दौरान देश में व्यापक सामाजिक परिवर्तन हुए हैं। समाज स्वत: बदल रहा है। अमानवीय व्यवहार, अपचार, अपराध, मानसिक बीमारी, भ्रष्टाचार आदि दुर्गुणों के बढ़ने से शिक्षित समाज का अपराधीकरण हो रहा है। इस परिस्थिति में ''शिक्षा से शालीन व्यवहार'' के विकास की सम्भावनाएँ एवं अपेक्षाएँ बढ़ना स्वाभाविक है। इसी परिप्रेक्ष्य में अब अध्यापक शिक्षा को सभ्य समाज के विकास हेतु सामाजिक संदर्भ में शीघ्र ही उचित कदम उठाना चाहिए।

अध्यापक शिक्षा संस्थानों की मौजूदा हालत :- शिक्षकों की गुणवत्ता और उनके कार्य करने के तरीकों में बदलाव की वास्तविक जिम्मेदारी शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थानों पर हैं। बगैर प्रभावी शिक्षक-प्रशिक्षण के शिक्षकों का कार्य व्यवहार कैसे सुधरेगा? हमारे देश में शिक्षक-प्रशिक्षण का एक भी विश्वविद्यालय न होना शिक्षक-प्रशिक्षण के प्रति हमारे कमजोर दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। आखिर ऐसी क्या मजबूरी है कि अन्य सभी क्षेत्रों (तकनीकी, कृषि, चिकित्सा) के अलग-अलग विश्वविद्यालय हैं, लेकिन देश भर में शिक्षक -शिक्षा का एक भी विश्वविद्यालय नहीं खोला जा सका? यह एक ऐसी महत्वपूर्ण रिक्तता है जिसकी पूर्ति किये बगैर, शिक्षक-प्रशिक्षक को बेहतर बनाना संभव नहीं हो सकता। अच्छे प्रशिक्षण का प्रभाव शिक्षकों की कार्यदक्षता पर अवश्य आएगा तथा अच्छे शिक्षकों (भयमुक्त) की प्राथमिकता भी अच्छे विद्यालय स्थापित करना होगी।

अध्यापक शिक्षा-संस्थानों की मौजूदा कार्यपद्धति :- देश भर में शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य मूलत: डाइट्स और शिक्षा महाविद्यालयों में चल रहा है। यह संस्थायें सरकारी और गैरसरकारी स्वरूप की हैं लेकिन उनमें प्रशिक्षण की प्रक्रियायें लगभग एक जैसी हैं। पिछले कुछ वर्षों से विभिन्न संस्थाओं द्वारा पत्राचार या दूरस्थ शिक्षा माध्यम से भी शिक्षक प्रशिक्षण कराया जा रहा है। सभी संस्थाओं में सेवा पूर्व और सेवारत शिक्षकों के लिये एक समान पाठ्यचर्या लागू है। शिक्षण प्रशिक्षण हेतु लागू पाठ्यक्रम अनुसार नवीन पाठ्य वस्तु और पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध ही नही हैं। एक विषय की अनेक पुस्तकें पढ़ने की परंपरा विगत लंबे समय से जारी है। डी.एल.एड., बी.एड. और एम.एड. प्रशिक्षण की कोई एकीकृत और उपयोगी पाठ्य

सामग्री उपलब्ध नहीं हैं।

शिक्षा अधिकार कानून लागू हो जाने से अब संवैधानिक रूप से प्रत्येक बच्चे को शिक्षा का मौलिक अधिकार मिल गया है। बच्चों को शिक्षा का यह अधिकार स्कूलों में कार्यरत शिक्षक ही दे सकते हैं। इसीलिए स्कूल और शिक्षकों को महत्वपूर्ण मानकर तदनुरूप व्यवस्थाएँ किए जाने का प्रयास भी किया जा रहा है। राष्ट्रीय स्तर पर अध्यापक शिक्षा का मिशन बनाना केन्द्रीय सरकार की उल्लेखनीय पहल कही जा सकती है।

यद्यपि अभी भी अध्यापन अभ्यास का कार्य अव्यावहारिक, रूढ़िगस्त और परंपरागत बना हुआ है। शिक्षण कला सिखाने की व्यावहारिक रणनीतियों का पूर्णत: अभाव है। सभी अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रमों की परीक्षायें विविध विश्वविद्यालयों द्वारा एवं राज्यों के माध्यमिक परीक्षा मंडल ले रहे हैं जिनका शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम और पाठ्यवस्तु निर्माण से कोई सीधा सरोकार नहीं है। सेवा पूर्व प्रशिक्षण अधिकांशतया दूरस्थ शिक्षा या पत्राचार माध्यम से भी कराया जा रहा है। नियमित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी अधिक प्रभावकारी नही हैं। शिक्षक प्रशिक्षक बनने – बनाने का कोई प्रभावी पाठ्यक्रम भी अभी संचालित नहीं है। प्रशिक्षण संवर्ग के लिये भी बी.एड.और एम.एड. प्रशिक्षणों को ही पर्याप्त और अंतिम मान्य किया जा रहा है। सेवापूर्व शिक्षक प्रशिक्षण और सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रभाव हीन हैं जबकि करोड़ों– अरबों रुपये की राशि निरंतर प्रतिवर्ष प्रशिक्षण संबंधी कार्यों में व्यय की जा रही है। वर्तमान में शिक्षक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम परस्पर एक दूसरे को समर्थन नहीं देते और न ही इनकी पाठ्यवस्तु में कोई सामंजस्य है।

अध्यापक शिक्षा की वर्तमान चुनौतियाँ :– राष्ट्रीय पाठयचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ)–2005 के अनुसार शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने के लिये चार निर्देशक सिद्धांत तय किये गये हैं:–

- ज्ञान को सांस्थानिक परिसर से बाहर फैले जीवन से जोड़ा जाए।
- सीखने को सिर्फ पाठ्य–पुस्तकों तक सीमित रखने की प्रवृत्ति को तोड़ा जाए।
- पाठ्य पुस्तकों को नीरसता, उबाऊपन और यांत्रिकता से उबार कर अधिक रोचक व समृद्ध बनाया जाए।
- परीक्षा प्रणाली को लचीला बनाया जाए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की इसी रूपरेखा में यह भी स्वीकार किया गया है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली सामाजिक सोच में परिवर्तन कर पाने में असफल और असमर्थ है। शिक्षा का आधुनिकीकरण यानि एक ऐसी समग्र चेतना के लिये कार्य करना जो प्रगतिशील जीवन के सामंजस्य के लिये हमें तैयार कर सकें। अत: भविष्योन्मुखी शिक्षा का सृजन नये समाज के लिये आवश्यक है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा यह भी मानती है कि आम नागरिक अपने बच्चों के लिए ऐसी शिक्षा चाहते हैं जिससे उनके बच्चे जीवन में सफल हो जाए। यह सफलता एक अर्थोत्पादक कौशल, उचित अनुचित का विवेक विकसित करने से संभव है। इसी दस्तावेज ने शिक्षा के विस्तार और घटते लिंगानुपात के बीच रिश्ते की तलाश में यह भी स्वीकार किया है कि शिक्षा ने महिलाओं को इस हद तक कमजोर बना दिया है कि आज वे जन्म लेने के अधिकार का भी उपयोग नही कर पा रही हैं। अंतत: यह माना गया कि शिक्षा का निर्धारण करने वाली शासकीय प्रक्रियाओं को सरल बनाया जाना चाहिए।

आज भी देश भर की शिक्षा व्यवस्था एन.सी.एफ.–2005 के इर्दगिर्द घूमती नजर आती है। देश के प्रसिद्ध शिक्षाविद् प्रो. यशपाल जी और प्रो.कृष्णकुमार जी (पूर्व निदेशक एन.सी.ई.आर.टी.) की टीम ने मिलकर जिस एन.सी.एफ.–2005 का सृजन किया था आज उन्हें स्वयं अनेक प्रश्नों के उत्तर खोजने होंगे।

शिक्षा में बदलावों के प्रमुख कारक अंतत: शिक्षक हैं, जिन्हें सशक्त बनाने के लिए निरंतर शिक्षण प्रशिक्षण का कार्य जारी है। शिक्षण प्रशिक्षण की प्रभाविता पर अब और अधिक ध्यान दिये जाने की जरूरत आ पड़ी है ताकि यह शैक्षिक बदलाव का प्रतीक बन सके।

एन.सी.एफ.–2005 के अनुसार शिक्षकों की पेशेवर तैयारी आवश्यक है। सेवा पूर्व और सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान अध्यापन अभ्यास का कार्य अत्यन्त औपचारिक, रूढ़िग्रस्त, परम्परागत और अव्यावहारिक बना हुआ है।

अध्यापक शिक्षा में सुधार हेतु प्रस्तावित रणनीति :- अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं और लोगों को यह भली भांति समझना चाहिए कि अध्यापक शिक्षा, सामान्य शिक्षा से महत्वपूर्ण है। अध्यापक शिक्षा को सार्थक और प्रभावी परिणामकारी बनाने के लिए, उपयोगी पाठ्यक्रम बनाने के साथ-साथ योग्य प्रशिक्षकों का चयन और निर्दोष मूल्यांकन प्रक्रिया तय की जानी चाहिए। आज यदि अध्यापक शिक्षा की समस्याओं का कारगर समाधान करना है तो अध्यापक शिक्षा संस्थाओं के प्रमुख का पद अकादमिक रूप से समर्थ शिक्षाविदों को ही सौंपना चाहिए। हमें ऐसे एकीकृत पाठ्यक्रमों की संरचना भी करनी चाहिए जिनके माध्यम से शिक्षण और प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम नियमित और श्रेणीबद्ध ढ़ग से संचालित हों ताकि किसी भी छात्र को नियमित पढ़ाई (बी.ए., बी.एस.सी.) की डिग्री पृथक से लेने का मोहताज ना रहना पड़े। यद्यपि एन.सी.ई.आर.टी द्वारा एकीकृत 4 वर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम विगत् कई वर्षों से संचालित है लेकिन इसे अभी तक राज्य सरकारों द्वारा अपनाया नहीं जा सका है। शिक्षा अधिकार कानून 2009 के अनुरूप प्रभावी शिक्षक प्रशिक्षण ही, शिक्षकों के दृष्टिकोण में वास्तविक बदलाव ला सकता है। बेहतर और प्रभावी प्रशिक्षण शिक्षकों को नया प्रयोग करने, शिक्षा में क्रान्तिकारी बदलाव लाने और शिक्षा के सामाजिक संदर्भो के प्रति संवेदनशील और जबाबदेह बनाने की दिशा में सकारात्मक सहयोग कर सकता है।

अध्यापक शिक्षा में सुधार हेतु सुझाव :- शिक्षकों की भूमिका को प्रभावी बनाने के लिए अध्यापक शिक्षा संस्थाओं की कार्यपद्धति में निम्नानुसार सुधार किया जाना अपेक्षित हैं-

1. देश की सर्वोच्च संस्थाओं एनसीईआरटी, न्यूपा और एनसीटीई से समन्वय स्थापित कर शिक्षक प्रशिक्षण हेतु एक ऐसे एकीकृत प्रशिक्षक-प्रशिक्षण पाठयक्रम की संरचना की जाए जो एक निश्चित समयावधि में प्रभावी शिक्षक प्रशिक्षक तैयार कर सकें। बगैर प्रशिक्षक बने कोई भला प्रशिक्षण देने के कार्य में दक्ष कैसे हो सकता है?
2. राष्ट्रीय स्तर पर एवं सभी राज्यों में कम से कम एक अध्यापक शिक्षा विश्वविद्यालय स्थापित हो, जिससे सभी डाइट और शिक्षा महाविद्यालय सम्बद्ध किये जाए।
3. राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर शिक्षक प्रशिक्षण की एक सुनियोजित कार्य नीति तैयार की जाए।
4. सभी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में एक पद प्रबंधक मानव संसाधन का स्वीकृत हो ताकि प्रत्येक प्रशिक्षक की वास्तविक क्षमताओं का आकलन कर उसे तदनुसार भूमिका सौपी जा सके।
5. शिक्षक प्रशिक्षक बनाने हेतु ठोस और एकीकृत पाठ्यवस्तु विकसित कराई जाये और तदनुसार प्रशिक्षक प्रशिक्षण आयोजित कराये जाए।
6. दूरस्थ शिक्षा सहित पत्राचार माध्यम से प्रशिक्षण के पाठयक्रमों केा कठोरतापूर्वक प्रतिबंधित किया जाए।
7. सेवारत शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये कम अवधि के उपयुक्त कोर्स बनाये जा सकते है।

8. सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने हेतु उपयुक्त रणनीति तैयार कर विकेन्द्रीकृत तरीके से प्रशिक्षण आयोजित कराये जाए।

9. प्रशिक्षण उपरांत प्रशिक्षण का फॉलोअप और मॉनीटरिंग किए जाने की प्रक्रिया तय कराई जाये ताकि शिक्षक सीखे गये ज्ञान और कौशल का भलीभांति उपयोग कर सके।

10. शिक्षक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव कर राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर शिक्षक प्रशिक्षकों के पृथक कैडर को शिक्षक संवर्ग से अलग प्रशिक्षण संवर्ग के रूप में मान्य कर उन्हें उच्च वेतन मान और अन्य जरूरी सुविधायें दिये जाने का प्रावधान तय करने से प्रशिक्षण की गुणवत्ता में वृद्धि संभव होगी।

11. जिस तरह तकनीकी शिक्षा के लिए देशभर में अनेक आई.आई.टी. और प्रबंधन की शिक्षा के लिए आई.आई.एम. संचालित है उसी प्रकार शिक्ष्क शिक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय शिक्षक शिक्षा विश्वविद्यालय स्थापित किये जाने के साथ सभी प्रदेशों में राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा संस्थान विकसित किये जाने चाहिये ताकि इनमें प्रवेश लेने वाले छात्र बेहतर शिक्षक के रूप में तैयार हो सके। इन संस्थानों में शिक्षक–प्रशिक्षकों के लिए भी उपयुक्त पाठ्यक्रम संचालित किये जा सकते है।

12. सभी स्तरों पर सहभागिता आधारित शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम लागू किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद 2006, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली।

2. गुणात्मक अध्यापक शिक्षा का पाठ्यचर्या प्रारूप, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद 1999, नई दिल्ली।

3. शिक्षक विकास एवं प्रबन्धन पर आयोजित सम्मेलन दिनांक 23 से 25 फरवरी 2009 के दौरान नीति व काम–काज सम्बन्धी चर्चाएँ एवं सुझाव, मानव संशाधन विकास मंत्रालय 2009, नई दिल्ली।

4. राज समाज और शिक्षा, प्रो.कृष्ण कुमार (1986), राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली।

5. Professional states of teachers, NCTE 1996 New Delhi.

6. शिक्षा के सरोकार –1. स्कूली शिक्षा के बदलते परिदृश्य में अध्यापन कर्म की रूपरेखा विषय पर केन्द्रित वार्षिक संगोष्ठी 23 से 25 मई 2017, अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय बेंगलुरू एवं अम्बेडकर विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

7. शिक्षक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, NCFTE 2009

जबलपुर शहर के स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले विद्यार्थियों की वाणिज्य विषय में उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

*श्रीमती प्रियंका ताम्रकार**

शोध सार

प्रस्तुत शोध में जबलपुर शहर के उच्चतर माध्यमिक अशासकीय विद्यालयों के स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले विद्यार्थियों की वाणिज्य विषय में उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। शोध अध्ययन वाणिज्य विषय को लिया गया है। जिसके अंतर्गत व्यावहारिक अर्थशास्त्र विषय को लिया किया गया। शोध हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया तथा शैक्षणिक उपलब्धि का मापन हेतु छात्र-छात्रों के वाणिज्य विषय के प्राप्तांकों को लिया गया। न्यादर्श हेतु जबलपुर शहर के अशासकीय विद्यालयों के 120 छात्र-छात्राओं का चयन किया गया जिसमें 60-60 छात्र -छात्राओं को यादृच्छिक विधि से चुना गया तथा उद्देश्य प्राप्ति हेतु सांख्यिकी विश्लेषण किया गया एवं पाया गया कि स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले विद्यार्थियों की वाणिज्य विषय की उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है।

वर्तमान समय प्रतिस्पर्धा का युग है, यह कहना अनुचित नही होगा। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जो इससे अछूता हो। इस प्रतिस्पर्धा का प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में भी दिखाई देता है, और विद्यार्थी जीवन-पर्यन्त सीखता ही रहता है किंतु उसकी औपचारिक शिक्षा का प्रारंभ विद्यालय प्रवेश के साथ होता है। विद्यालय में बालक अपने शिक्षकों से ज्ञान प्राप्त करता है जहां विभिन्न योग्यता वाले शिक्षकों द्वारा शिक्षण कार्य करवाया जाता है। उनके द्वारा किया गया शिक्षण कार्य प्रभावी है अथवा नहीं। यह ज्ञान छात्रों के परीक्षा परिणाम के रूप में उनकी शैक्षणिक उपलब्धि को दर्शाता है। सामान्यत: उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों में स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा अध्यापन कार्य करवाया जाता है किंतु बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण आज विद्यालय में स्नातक उपाधि प्राप्त शिक्षकों को भी उच्चतर माध्यमिक स्तर पर न्यून वेतन में नियुक्त कर दिया जाता है। इसका एक कारण महँगाई भी है क्योंकि वर्तमान में किसी भी डिग्रीधारी कोर्स के प्रवेश शुल्क की मात्रा बहुत अधिक है इस कारण उच्च शिक्षा प्राप्त करना भी आसान नहीं है, इसीलिए व्यक्ति स्नातक उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् स्वंय रोजगार प्राप्त करके उच्च शिक्षा प्राप्त करके उच्च शिक्षा हेतु प्रयास करता है।

विभिन्न विद्यालय उच्चतर माध्यमिक स्तर पर मानकों की अनदेखी करते हुए स्नातक उपाधि प्राप्त शिक्षक रखते हैं और अपने स्वार्थ को सिद्ध करते है। वाणिज्य विषय का चयन विद्यार्थियों द्वारा उच्चत्तर माध्यमिक स्तर पर किया जाता है। वाणिज्य में प्रमुखत: तीन विषय शामिल होते हैं, जिनमें से व्यावहारिक अर्थशास्त्र विषय को शोध कार्य हेतु चुना गया है।

इस विषय के अध्यापन हेतु व्यक्ति को संबंधित विषय में स्नातकोत्तर की उपाधि होना आवश्यक होता है, क्योंकि यह माना जाता हैं कि स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त व्यक्ति अपने विषय में विशिष्ट योग्यता रखता है किन्तु कभी-कभी स्नातक उपाधि प्राप्त व्यक्ति की अपने विषय के प्रति अवधारणा स्पष्ट होती है, जिससे उसका शिक्षण भी उतना ही प्रभावी होता है, जितना कि स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त व्यक्ति का शिक्षण।

***सहायक प्राध्यापिका, जबलपुर पब्लिक कॉलेज, करमेता, जबलपुर (म.प्र.)**

शिक्षण पर योग्यता, विषय के ज्ञान के अलावा अनुभव का प्रभाव पड़ता है, अर्थात् कम योग्यता वाले व्यक्ति के पास यदि अधिक अनुभव है, तो उसका प्रभाव उसके शिक्षण पर दिखाई देता है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जिस व्यक्ति विषय विशेष में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की है, उसका शिक्षण प्रभावी नहीं है।

शिक्षक का शिक्षण कितना प्रभावी है इसका ज्ञान उसके विद्यार्थियों की शैक्षणिक प्रगति से होता है क्योंकि जिस शिक्षक के पढ़ाने का तरीका जितना प्रभावी होगा उसकी कक्षा में विद्यार्थियों की उपस्थिति उतनी ही अधिक होगी। साथ ही विद्यार्थियों द्वारा शिक्षण में रूचि प्रदर्शित होगी। यही कारण है, कि कुछ शिक्षक व्यावहारिक अर्थशास्त्र जैसे विषय को भी इतने रोचक तरीके से पढाते हैं कि विद्यार्थियों में उस विषय के प्रति नीरसता उत्पन नहीं होती है और वह उस विषय पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं जिसका परिणाम छात्रों के परीक्षा फल के रूप में प्राप्त होता है यह परीक्षा परिणाम ही छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि कहलाता हैं।

इग्वे (1990) ने शिक्षकों की योग्यता एवं छात्रों की उपलब्धि के मध्य महत्वपूर्ण संबंध नहीं पाया तथा ज्यूज्वोस्की, रूथ (2003) ने भी शिक्षकों की योग्यता एवं विद्यार्थियों की उपलब्धि में कोई सार्थक संबंध नहीं पाया गया किन्तु थामस, ओ अवे (2004) नें व्यावसायिक एवं अव्यावसायिक शिक्षकों द्वारा पढ़ाये जाने वाले छात्रों की उपलब्धि में अंतर पाया गया। व्यावसायिक शिक्षकों द्वारा पढ़ाये जाने वाले छात्रों की उपलब्धि अधिक थी इसमें उपलब्धि के प्रभाव का प्रत्यक्षीकरण किया जा सकता है। स्नातक एवं स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त शिक्षक यदि एक ही कक्षा को पढ़ाते हैं, तो क्या विद्यार्थियों की उपलब्धि में अंतर होगा यह एक विचारणीय प्रश्न है, जिसका समाधान प्रस्तुत शोध में किया जाने का प्रयास किया गया है। यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षक के व्यक्तित्व एवं ज्ञान का विद्यार्थियों की उपलब्धि पर प्रभाव पड़ता है ऐसी स्थिति में योग्यता का कितना महत्व है यह ज्ञात हो सकेगा।

चर - **स्वतंत्र चर** - स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षक

परतंत्र चर - वाणिज्य विषय में शैक्षणिक उपलब्धि

नियंत्रित चर- कक्षा, आयु

शोध के प्रमुख उद्देश्य है -

(1) स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य विषय की उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन।

(2) स्नातक/ स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य विषय की उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन।

परिकल्पना -

(1) स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य विषय की उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं होता है।

(2) स्नातक/ स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य विषय की उपलब्धि कोई सार्थक अंतर नहीं होता है।

न्यादर्श – न्यादर्श में जबलपुर शहर के स्नातक एवं स्नात्तोकत्तर उपाधि प्राप्त शिक्षकों वाले अशासकीय विद्यालयों कक्षा 11 वी कक्षा के 30–30 छात्र–छात्राओं को लिया गया।

उपकरण – छात्र एवं छात्राओं का वाणिज्य विषय के प्राप्तांक।

कार्यविधि – अशासकीय विद्यालयों के स्नातक एवं स्नातकोत्तर उपाधि वाले शिक्षकों की 11 वीं कक्षा के छात्र एवं छात्राओं का चयन कर उनकी वाणिज्य विषय की उपलब्धि ज्ञात की गई एवं निष्कर्ष ज्ञात करने हेतु मध्यमान, मानक विचलन, एवं क्रांतिक अनुपात की गणना की गई।

परिणामों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

न्यादर्श से प्राप्त परिणामें का विश्लेषण एवं व्याख्या निम्नानुसार की गयी है –

तालिका क्र. 01

स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य विषय की उपलब्धि के तुलनात्मक परिणाम

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात
स्नातक शिक्षक	60	63.50	14.55	0.25
स्नातकोत्तर शिक्षक	60	62.90	15.80	

उपरोक्त तालिक क्र. 01 में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य विषय की उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका क्र. 02

स्नातक/ स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य विषय की उपलब्धि के तुलनात्मक परिणाम

लिंग	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात
छात्र	स्नातक शिक्षक	30	60.67	14.83	0.089
	स्नातकोत्तर शिक्षक	30	60.43	14.81	
छात्रा	स्नातक शिक्षक	30	66.00	13.95	0.099
	स्नातकोत्तर शिक्षक	30	65.73	16.03	

उपरोक्त तालिका क्र. 02 में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि स्नातक/ स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य विषय की उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका क्र. 03

स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्र - छात्राओं की वाणिज्य विषय की उपलब्धि के तुलनात्मक परिणाम

समूह	लिंग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात
स्नातक शिक्षक	छात्र	30	60.67	14.83	1.43
	छात्रा	30	66.00	13.95	
स्नातकोत्तर शिक्षक	छात्र	30	60.43	14.81	1.18
	छात्रा	30	65.73	16.03	

उपरोक्त तालिका के परिणामों से स्पष्ट है कि स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य विषय की उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढाए जाने वाले छात्र एवं छात्राओं की उपलब्धि में लिंग भिन्नताएं नहीं हैं।

उपरोक्त तालिकाओं में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षकों की शैक्षणिक योग्यता का विद्यार्थियों की वाणिज्य विषय की उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है ना ही उपलब्धि में कोई लिंग भिन्नताएं हैं। विद्यार्थी कक्षा 11वीं के होने के कारण उनका एक व्यावसायिक लक्ष्य निर्धारित है जिस कारण उन्होंने वाणिज्य विषय को वैकल्पिक विषय के रूप में चुना है। यह विद्यार्थी एक ऐसे स्तर पर आ गए हैं जहां अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए वे स्वयं लगन और मेहनत के साथ अध्ययन कर रहे हैं शिक्षक के स्नातक और स्नातकोत्तर होने से उन्हें कोई अंतर नहीं पड़ता हैं। शिक्षक एक मार्गदर्शक के रूप में जो विद्यार्थियों को उचित उपलब्धि के लिए प्रेरित करते हैं साथ में विद्यार्थियों को विषय-वस्तु से संबंधित कठिनाईयों के निराकरण में पूरा सहयोग देते हैं। जिससे उन्हें विषय वस्तु संबंधी कोई कठिनाई नहीं होती। न्यादर्श में अधिकांश विद्यार्थी भविष्य की योजनाओं को लेकर कोचिंग संस्थान में अध्ययन कर रहें हैं संभवत: वहां अध्ययन संबंधी दृष्टिकोण, उच्च उपलब्धि के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। शाला में शिक्षक स्नातक उपाधि प्राप्त हों या स्नातकोत्तर, यदि वे विद्यार्थियों को पूरी तन्मयता के साथ पढ़ाते हैं जिससे विषय संबंधी प्रत्यय स्पष्ट हो जावें तो विद्यार्थियों के लिए शिक्षकों की उपाधि या योग्यता का कोई महत्व नहीं है ना ही उन्होंने इस संबंध में विद्यालय प्रशासकों से कभी कोई जानकारी प्राप्त की है। शिक्षकों की विद्यार्थियों के प्रति निष्ठा विद्यार्थियों के अपने कॉरियर के प्रति दृष्टिकोण उन्हें अधिकतम संभाव्य उपलब्धि के लिए प्रेरित करते हैं अत: वर्तमान शोध परिणाम सामयिक प्रतीत होते है।

शिक्षकों की योग्यता एवं छात्रों की उपलब्धि के मध्य संबंध का ना होना भी इग्वे (1990) एवं ज्यूज्वोस्की, रूथ (2003) ने पाया कि निष्कर्ष प्रस्तुत शोध निष्कर्ष के अनुरूप है। इसके विपरीत थामस ओ.अवे (2004) के निष्कर्षों में व्यावसायिक शिक्षकों द्वारा पढ़ाये गये विद्यार्थियों की उपलब्धि अधिक थी जो प्रस्तुत शोध परिणाम के अनुरूप नहीं है वर्तमान समय में अत्यधिक प्रतियोगिता होने के कारण विद्यार्थी शिक्षक को एक मार्गदर्शक के रूप में देखते हैं जो उनकी कठिनाईयों का समाधान करके उच्च उपलब्धि हेतु प्रेरणा प्रदान कर सके। शिक्षकों की योग्यता का इससे कोई विशेष संबंध नहीं है अत: वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शोध परिणाम स्वाभाविक प्रतीत होते है।

निष्कर्ष –

1. स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य विषय की उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. स्नातक/ स्नातकोत्तर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य विषय की उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ :-

- "Igwe,. D.O. (1990)." Science teachers' qualifications and students performance in secondary school 's in Kano State "Journal of Science Teacher Association o f Nigeria, vol 26 (2)
- कपिल, एच के (2013), सांख्यिकी के मूल तत्व, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन, नवीन संशोधित संस्करण
- राणा, बलवंत (2015) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर संशोधित संस्करण
- सिंह, रामपाल (2012) वाणिज्य शिक्षण, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन
- Thomas O. Abe(2014) "The effect of teachers' qualifications on students' performance in mathematics" Sky Journal of Educational Research Vol. 2(1), pp. 010 - 014,
- Zuzovsky,R.(2003)"Teachers' Qualifications And Their Impact On Student achievement Findings From TIMSS -2003 Data In Israel"

  http://www.iea.nl/sites/default/files/irc//IRC2008_Zuzovsky2.pdf

व्यावसायिक निर्देशन एक समीक्षा

*डॉ. विनीता पाण्डेय**

शोध सार

वर्तमान में उत्तम व्यावसाय का चुनाव एक समस्या है। आमतौर पर लोग अपने पारम्परिक व्यावसाय को ही अपनी जीविका का साधन बनाते हैं। यह बात पुराने समय में तो ठीक थी, कारण, समाज सरल था, व्यावसाय कम थे, आवश्यकतायें सीमित थीं, परन्तु आज विज्ञान तथा तकनीकी अविष्कारों ने जीवन को जटिल बना दिया है, रोजगार के विविध प्रकार विकसित किये हैं और सादा जीवन बिताने के बजाय वैभवशाली सुविधा सम्पन्न जीवन व्यतीत करने की आकांक्षाओं में वृद्धि होने लगी है। इसलिये अनेक व्यावसायों में से कौन-सा व्यावसाय चुना जाय, व्यक्ति के समक्ष यह समस्या उत्पन्न हुई है। प्रस्तुत आलेख में वर्तमान में उपस्थित विभिन्न व्यावसायों के चुनाव में आने वाली समस्याओं के निदान हेतु व्यावसायिक निर्देशन के महत्व एवं कार्य प्रणाली को प्रदर्शित किया गया है जो विद्यार्थियों के व्यावसायिक चुनाव में सहायक सिद्ध होगी।

आमतौर पर लोग अपने पारम्परिक व्यावसाय को ही अपनी जीविका का साधन बनाते हैं। यह बात पुराने समय में तो ठीक थी, कारण, समाज सरल था, व्यावसाय कम थे, आवश्यकतायें सीमित थीं, परन्तु आज विज्ञान तथा तकनीकी अविष्कारों ने जीवन को जटिल बना दिया है, रोजगार के विविध प्रकार विकसित किये हैं और सादा जीवन बिताने के बजाय वैभवशाली सुविधा सम्पन्न जीवन व्यतीत करने की आकांक्षाओं में वृद्धि होने लगी है। इसलिये अनेक व्यावसायों में से कौन-सा व्यावसाय चुना जाय, व्यक्ति के समक्ष यह समस्या उत्पन्न हुई है।

निर्देशन का प्रारम्भ व्यावसायिक निर्देशन से हुआ। निर्देशन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करने वाले विद्वान् फ्रैंक पारसन्स ने सर्वप्रथम व्यावसायिक निर्देशन शब्द का प्रयोग किया था और उन्होंने ही इसके विषय-क्षेत्र एवं कार्य पर प्रकाश डाला। बोस्टन व्यावसायिक ब्यूरो के निर्देशक के रूप में उन्होंने इस क्षेत्र में काफी उपयोगी योगदान दिया। उसके बाद निर्देशन क्षेत्र में कार्य करने वाले अनेक विद्वानों ने व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा की एवं इसकी प्रकृति तथा प्रयोजन को स्पष्ट किया।

व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ एवं परिभाषा -

व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ यह लिया जाता है कि कार्य विशेष के लिए उचित व्यक्ति का चुनाव अथवा व्यक्ति विशेष के लिए उचित कार्य का चुनाव ही व्यावसायिक निर्देशन है। सन् 1937 में संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रीय व्यावसायिक निर्देशन संघ ने व्यावसायिक निर्देशन के कुछ सिद्धान्तों को स्थिर करने का प्रयत्न किया था। संघ के प्रतिवेदन के अनुसार, ''व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति को किसी व्यावसाय के चुनाव करने, उसके लिए तैयारी करने, उसमें प्रवेश करने एवं प्रगति करने में मदद करने का प्रक्रम है। इसका सम्बन्ध मुख्य रूप से भविष्य की योजनाएँ बनाने एवं जीवनचर्या के निर्माण हेतु किये जाने वाले निर्णयों एवं विकल्प के चुनावों में व्यक्ति को सहायता प्रदान करने से है- ये निर्णय एवं वैकल्पिक चुनाव को सन्तोषजनक व्यावसायिक समंजन प्रदान करने के लिए आवश्यक है।

सन् 1949 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई. एल. ओ.) ने व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ स्पष्ट करते हुए बताया-

***रीडर, लक्ष्मी बाई साहू जी कॉलेज, जबलपुर**

''व्यावसायिक निर्देशन, व्यक्तियों के गुणों एवं व्यावसाय के अवसरों के साथ उनके सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए, व्यक्ति को व्यावसाय के वरण एवं उसकी प्रगति में आने वाली समस्याओं के सुलझाने में प्रदान की जाने वाली सहायता को कहते हैं।''

सुपर ने व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा इन शब्दों में की है, ''किसी व्यक्ति को अपना (स्वयं का) एवं व्यावसाय जगत के बीच अपनी भूमिका एव संपर्याप्त(एडीक्वेट) चित्र बनाने एवं उसे स्वीकार करने, वास्तविक स्थिति के बीच इस अवधारणा की जाँच करने एवं उसे स्वयं के सन्तोष तथा समाज के लाभ हेतु वास्तविकता में बदलने की सहायता प्रदान करने के प्रक्रम को व्यावसायिक निर्देशन कहते हैं।''

सुपर के इन विचारों का विश्लेषण करें तो उससे व्यावसायिक निर्देशन के तीन पक्ष हमारे सम्मुख आते हैं। पहली बात यह है कि व्यक्ति अपनी योग्यता, क्षमता एवं संवेगात्मक स्थिति के विषय में भली प्रकार जान सके और अपने गुणों एवं सीमाओं को स्वीकार कर सके। दूसरी बात यह है कि व्यावसाय के अवसरों में कौन से व्यावसायों को वह उपयुक्त पाता है और उपस्थित अवसरों से अपनी शक्ति एवं सीमाओं की जाँच करने के उपरांत वह कौन सा व्यावसाय चुनता है। तीसरी बात यह है कि वरण किये जाने वाले व्यावसाय के द्वारा वह स्वयं को अधिक से अधिक सन्तोष प्रदान कर सके एवं समाज का भी लाभ हेा सके। ये तीनों कार्य व्यक्ति ठीक प्रकार से कर सके, इसलिए उसे व्यावसायिक निर्देशन की सहायता लेनी पड़ती है।

व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता –

व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा करते हुए हमने व्यावसायिक निर्देशन के स्वरूप एवं उद्देश्य पर प्रकाश डाला। जैसा कि हम जानते हैं, व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता का एक महत्वपूर्ण आधार व्यक्ति के बीच पाई जाने वाली भिन्नताएँ हैं। यदि सभी व्यक्ति समान होते तो सामान्य निर्देशन एवं व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता का दूसरा आधार व्यावसायों की अनेकरूपता है। किस प्रकार का व्यावसाय किस व्यक्ति के अनुरूप होगा, यह निर्णय करने के लिए एक व्यवस्थित व्यावसायिक निर्देशन कार्यक्रम की आवश्यकता पड़ती है।इस प्रकार व्यावसायों की प्रकृति भिन्न होने के कारण व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

1. सफलता एवं संतोष के लिये – व्यक्ति के निजी जीवन की सफलता एवं सन्तोष तथा समाज की दृष्टि से भी व्यावसायिक निर्देशन एक महत्वपूर्ण प्रक्रम है। यदि व्यक्ति का विकास समुचित रूप से होता है और उसे अपनी रूचि एवं क्षमता के अनुरूप व्यावसाय के वरण में सफलता प्राप्त होती है तो उसे सर्वांगीण विकास प्राप्त करने एवं सुखी जीवन बिताने में सफलता मिलती है फलस्वरूप वह समाज का एक अच्छा सदस्य बनता है। जीवन में जितने अधिक व्यक्ति इस प्रकार सामंजस्य प्राप्त करते है, समाज की आर्थिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि उसी अनुपात में बढ़ती है।

2. मानवीय क्षमता तथा साधनों का उपयोग – मानवीय क्षमता एवं साधनों का समुचित उपयोग व्यवस्थित व्यावसायिक निर्देशन के अभाव में नहीं हो सकता है। इस क्षमता एवं शक्ति का जितना अधिक नियोजित उपयोग हो सकेगा, व्यक्ति एवं समाज की खुशहाली उसी अनुपात में सम्भव हो सकेगी।

3. बदलते समाज में अनुकूलन हेतु – आज के निरन्तर परिवर्तनशील युग और समाज में व्यावसायिक निर्देशन की पहले से अधिक आवश्यकता है। विज्ञान की नित्य नवीन खोजों से जीवन की परिस्थितियॉ तो बदली ही हैं, उद्योग और टेक्नालॉजी में भी अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित हुए हैं। मशीनों, उद्योगों और टेक्नालॉजी में भी अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित हुए हैं। मशीनों पर बढ़ती हुई निर्भरता यन्त्रीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न कार्य की नयी स्थितियों के सन्दर्भ में व्यावसायिक

निर्देशन व्यक्ति और समाज की सहायता करता है। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता अनेकानेक दृष्टियों से अनुभव की जाती है।

व्यावसायिक निर्देशन का क्षेत्र –

व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा करते हुए अमेरिका के राष्ट्रीय व्यावसायिक निर्देशन संघ ने व्यावसाय के वरण, उसकी तैयारी, उसमें प्रवेश तथा प्रगति करने में प्रदान की जाने वाली सहायता को व्यावसायिक निर्देशन माना। वस्तुत: निर्देशन को शैक्षिक एवं व्यक्तिगत निर्देशन के क्षेत्रों से बिलकुल पृथक मानना असंगत है।

1. शैक्षिक पृष्ठभूमि और उसका उपयोग – व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति की शैक्षिक पृष्ठभूमि एवं उसकी शिक्षा सम्बन्धी सम्भाव्यताओं को ध्यान में रखकर व्यक्ति को अपनी सेवाएँ प्रदान करता है। व्यक्ति की शैक्षिक सम्भाव्यताओं एवं उपलब्धियों पर उसका स्वास्थ्य, स्वभाव, सामाजिक तथा सांस्कृतिक समस्याएँ प्रभाव डालती हैं। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन, निर्देशन के अन्य पक्षों को भी अपनी आवश्यकतानुसार अपने क्षेत्र में लेता है।

2. शिक्षा तथा व्यावसाय का सम्बन्ध – व्यावसायिक निर्देशन एवं व्यावसायिक शिक्षा का निकट सम्बन्ध है। व्यावसायिक शिक्षा द्वारा, व्यावसायिक निर्देशन की सहायता से वरण किये गये व्यावसाय के लिए व्यक्ति को तैयार किया जाता है। प्राय: लोग व्यावसायिक शिक्षा एवं व्यावसायिक निर्देशन को एक समझ लेते हैं। वास्तविकता यह है कि व्यावसायिक निर्देशन का प्रक्रम व्यावसायिक शिक्षा की सफलता का आधार है पर दोनों में अन्तर है।

3. व्यावसाय का चयन– व्यावसायिक निर्देशन व्यावसाय के चुनाव, उसमें प्रवेश एवं व्यावसाय में अपेक्षित प्रगति में आने वाली कठिनाइयों के समाधान में व्यक्ति की सहायता करता हे। व्यावसायिक शिक्षा व्यावसाय विशेष की तैयारी के लिए प्रदान की गई शिक्षा है। विद्यालय के उपरान्त जीवन में कार्य की सफलता के लिए दोनों का महत्व है और इस दृष्टि से दोनों एक–दूसरे के पूरक है।

4. व्यावसायिक सफलता – व्यावसायिक निर्देशन का क्षेत्र व्यावसायिक चुनाव से लेकर व्यावसायिक सफलता तक व्याप्त है। इस क्रम में व्यक्ति को जिस जानकारी की आवश्यकता होती है उसे प्राप्त करने में कैरियर मास्टर द्वारा व्यावसायिक निर्देशन सहायक होता है। साथ ही व्यावसायिक निर्देशन में व्यक्ति की रूचियों, योग्यताओं, भावात्मक मन:–स्थिति एवं सम्भाव्यताओं का अध्ययन भी विद्यालयी मनोवैज्ञानिक द्वारा किया जाता है। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन जहाँ व्यावसायिक वैभिन्य को अपने अध्ययन क्षेत्र में लेता है वहाँ वैयक्तिक भिन्नताओं को भी उसे ध्यान में रखना पड़ता है। व्यावसायिक निर्देशन का लक्ष्य मानवीय क्षमता का व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अधिकतम उचित नियोजन करना है। इस प्रकार जैसा कि मायर्स का विचार है 'व्यावसायिक निर्देशन एक निरन्तर चलने वाला एक लम्बा प्रक्रम है।'

व्यावसायिक विकास के सैद्धान्तिक उपागम –

किस प्रकार एक बालक, आर्थिक रूप से एक स्वतन्त्र कार्मिक का रूप ले लेता है, इस विषय में निर्देशनविदों की अनेक सैद्धान्तिक अवधारणाएँ प्रचलित हैं जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं–

1. शीलगुण एवं कारक सिद्धान्त
2. विकासात्मक सिद्धान्त
3. संरचनात्मक सिद्धान्त

(1) शीलगुण एवं कारक सिद्धान्त– इस सिद्धान्त की मूल मान्यता यह है कि व्यावसायिक विकास, व्यक्ति के उन शीलगुणों पर आधारित है जो कि उस व्यावसाय में जिसमें वह कार्य कर रहा है, से समरूपता रखते हैं। समकालीन सांख्यिकीय अध्ययनों में इन शीलगुणों को स्वतन्त्र कारकों के रूप में प्रतिपादित किया गया है। जिसमें उन्होंने व्यावसाय के बुद्धिमतापूर्ण चयन में निम्न तीन कारकों को उत्तरदायी ठहराया है–

1. व्यक्ति द्वारा अपनी योग्यताओं, अभिवृत्तियों, क्षमताओं, आकांक्षाओं एवं सीमाओं की स्पष्ट समझ या इनका पूर्व ज्ञान।
2. कार्य या व्यावसाय के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध आवश्यकताओं, सफलता के लिए वांछित दशाओं, लाभों तथा हानियों, क्षतिपूर्ति एवं विकास के अवसरों का व्यक्ति को ज्ञान।
3. उपरोक्त इन दो तथ्यों के मध्य सम्बन्धों की सही तर्कपूर्ण धारणा का व्यक्ति में विकास।

(2) विकासात्मक सिद्धान्त – निर्देशन के क्षेत्र में व्यावसायिक विकास के प्रति व्यवस्थित दृष्टिकोण अपनाने का शुभारम्भ गिन्जबर्ग तथा उसके सहयोगियों की पुस्तक 'आकूपेशनल च्वाइस –एन एप्रोच टू ए जनरल ब्यूरो' के प्रकाशन के उपरान्त आरम्भ हुआ। इन विचारकों ने व्यावसायिक विकास को एक दीर्घकालीन प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जो कि प्रारम्भिक बाल्यावस्था से लगभग बीस वर्ष की आयु तक चलती है। व्यावसायिक विकास के इस काल को इन विचारकों ने तीन सामान्य अवस्थाओं में विभाजित किया है–

1. कल्पनात्मक अवस्था
2. अन्तरिम अवस्था
3. वास्तविक अवस्था

1. कल्पनात्मक अवस्था – जो कि जीवन के प्रारम्भिक दस वर्षों तक चलती है, उसमें बालक के सामने यह प्रश्न रहता है कि बड़ा होकर वह क्या बनेगा? बालकों की अनेक कल्पनाएँ इस सन्दर्भ में होती हैं।

2. अन्तरिम अवस्था– कल्पनात्मक अवस्था के उपरान्त 11 से 17 वर्ष के मध्य की अवस्था, अन्तरिम अवस्था कहलाती है। इस अवस्था में बालक का ध्यान अपने भविष्य के व्यावसाय के विभिन्न क्षेत्रों की सीमाओं की ओर उन्मुख रहता है। इस अवस्था के अन्तगर्त विकास के चार चरणों का उल्लेख, पूवेक्ति विचारकों ने किया है। इन सभी चार चरणों में कैरियर मास्टर की भूमिका महत्वपूर्ण है–

प्रथम चरण :– अर्थात् 11–12 वर्ष की आयु में बालक व्यावसाय का चयन एवं उनके लिए योजनाएँ बनाने का कार्य अधिकांशत: अपनी व्यक्तिगत रूचियों के आधार पर करता है।

द्वितीय चरण :– 13–14 वर्ष के काल में, बालक का यह चयन, उसके द्वारा जानी गयी अपनी योग्यताओं एवं अपनी क्षमताओं पर आधारित हो जाता है।

तृतीय चरण:– जो कि 14–15 वर्ष के मध्य पाया जाता है। इसमें बालक अपने चयन को मूल्य प्रदान करने में सक्षम हो जाता है। इस काल में बालक यह निर्णय लेने के योग्य हो जाता है कि भावी व्यावसाय के चयन के दृष्टिकोण से क्या उसके लिए महत्वपूर्ण है?

चतुर्थ चरण :- जो कि 15 से 17 वर्ष के मध्य पाया जाता है, एक प्रकार का संक्रमण काल है जबकि बालक अपने व्यावसायिक चयन सम्बन्धी मूल्यों को एवं आर्थिक संरचना के सन्दर्भ में रखकर उनका मूल्यांकन करता है तथा चयन की वास्तविकताओं की ओर अग्रसर होता हैं।

वास्तविक अवस्था - यह अवस्था लगभग 18 वर्ष से प्रारम्भ होकर तब तक चलती रहती है जब तक कि व्यक्ति किसी व्यावसाय में लग नहीं जाता इस काल में व्यक्ति विभिन्न व्यावसायों के विषय में पूर्वज्ञान प्राप्त करने की ओर उन्मुख रहता है। इस प्रकार के अन्वेषण के उपरान्त ही व्यक्ति अपने व्यावसाय के विषय में कोई अन्तिम निर्णय लेता है।

हैवीघर्स्ट द्वारा प्रतिपादित व्यावसायिक विकास की अवस्थाओं की संक्षिप्त विवेचना निम्न रूप में प्रस्तुत की जा सकती है-

तादात्मीकरण अवस्था - यह अवस्था 5 से 10 वर्षों के मध्य की है। इस काल में बालक अपने परिवार के किसी कार्यकर्ता के साथ तांदात्म्य स्थापित करता है। अधिकांश मामलों में यह पिता ही होता है। जैसे-जैसे बालक यह समझने लगता है कि आगे चलकर वह एक प्रौढ़ व्यक्ति बनेगा उसकी भूमिकाएँ पारिवारिक कार्यों से सम्बद्ध होने लगती हैं।

अर्जन अवस्था - 10 से 15 वर्ष के मध्य का बालक पूर्णतया उन आधारभूत गुणों व योग्यताओं के अर्जन में संलग्न रहता है जिनके द्वारा वह काम प्राप्त करने में सफल सिद्ध हो सके। इस अवस्था में बालक अपना दायित्व समझने लगता है। उसमें कार्य के विषय में अपनी अवधारणा विकसित हो जाती है। कार्य का अभिप्राय इस अवस्था में गृह एवं शिक्षालय कार्यों से प्रमुखत: होता है।

व्यावसायिक अवस्था- यह अवस्था काल, हैवीघर्स्ट ने 15 से 25 वर्ष के मध्य स्वीकार किया है। इस अवस्था में व्यक्ति या बालक, समाज की व्यावसायिक संरचना के अन्तर्गत कार्यकर्ता के रूप में अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इस अवस्था में बालक अपने लिए व्यावसाय के विषय में पूर्ण निर्णय लेता है तथा उसकी प्राप्ति हेतु तैयारी में लग जाता है।

उत्पादक अवस्था- 25 से 40 वर्ष के काल को उत्पादक अवस्था की संज्ञा हैवीघर्स्ट ने प्रदान की है। इस अवस्था में व्यक्ति अपनी कार्य-कुशलता के चरमोत्कर्ष पर पहुँच जात है। व्यक्ति अपनी उत्पादकता को 40 से 70 वर्ष की आयु तक बनाये रखने का प्रयास करता है। इस अवधि के मध्य वह व्यावसायिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति की ओर भी उन्मुख रहता है।

अवस्था	विशेषता
वृद्धि (15वर्ष की आयु तक)	1. कल्पनात्मक अवस्था: 4 से 10 वर्ष तक।
	2. रूचि अवस्था: 11 तथा 12 वर्ष के मध्य।
	3. अभियोग्यता अवस्था:- 13 से 14 वर्ष के माध्य
अन्वेषण (15 से 24 वर्ष के मध्य)	1. अन्तरिम अवस्था: 15 से 17 वर्ष के मध्य।
	2. संक्रमण अवस्था: 18 से 21 वर्ष के मध्य
	3. प्रयास अवस्था: 22 से 24 वर्ष के मध्य
संस्थान (25 से 40 वर्ष के मध्य)	1. प्रयास अवस्था: 25 से 30 वर्ष के मध्य।
	2. स्थायीकरण अवस्था: 30 से 40 वर्ष के मध्य।

व्यवस्थापन (45 से 64 वर्ष के मध्य) पतन (64 वर्ष के उपरान्त)	1. स्थायीकरण अवस्था

संरचनात्मक सिद्धान्त - संरचनात्मक सिद्धान्तों का विकास इस अन्वेषण के सन्दर्भ में हुआ कि एक व्यक्ति विशिष्ट व्यावसाय में क्यों लग जाता है? व्यावसायिक चयन के पीछे अन्तर्निहित कौन-सी व्यक्तिगत विशिष्टताएँ या गुण हैं जो कि किसी व्यक्ति को एक विशेष व्यावसायिक चयन हेतु बाध्य या प्रेरित करती हैं। इस विचार को लेकर ही संरचनात्मक सिद्धान्तों की श्रृंखला का विकास हुआ है।

हालेण्ड ने व्यावसायिक चयन के निर्धारण के सन्दर्भ में, व्यक्तित्व प्रारूपों की संरचनाओं को निर्धारक तत्व स्वीकार किया है। उसके अनुसार व्यक्तियों को छः व्यक्तित्व संरचनाओं के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है-1. वास्तविक 2. बौद्धिक 3 सामाजिक 4. परम्परागत 5.उद्यमशील तथा 6. कलात्मक व्यक्तित्व।

हालेण्ड के अनुसार, वास्तविकतावादी व्यक्तियों में निम्न स्तरीय सामाजिक कुशलता एवं संवेदनशीलता पायी जाती है और ये अन्तर्व्यक्तिगत एवं मौखिक कार्यकुशलता सम्बन्धी कार्यों से भागते हैं। बौद्धिक व्यक्तियों में चिन्तन की योग्यता कार्य करने की अपेक्षा अधिक पायी जाती है। सामाजिक परम्परागत व्यक्तित्व वाले व्यक्ति शिक्षण जैसे कार्यों की ओर अधिक उन्मुख होते हैं। परम्परागत व्यक्तित्व वाले व्यक्ति पद-समान, सत्ता एवं शक्ति से सम्बद्ध व्यावसायों में अधिक रूचि रखते हैं। उद्यमशील व्यक्तित्व प्रधान व्यक्ति वाक् चातुर्य रखते हैं तथा लोगों पर प्रभाव जमाने में उनकी रूचि अधिक रहती हैं कलात्मक व्यक्तित्व के लोग आत्माभिव्यक्ति को सर्वाधिक महत्व अपने व्यावसाय के अन्तर्गत प्रदान करते हैं।

सुपर के सिद्धान्त में भी संरचनात्मक पक्ष पर बल दिया गया है। सुपर के अनुसार- एक व्यावसाय के चयन के माध्यम से व्यक्ति अपने आत्म प्रत्यय को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। अन्य शब्दों में, सुपर यह स्वीकार करता है कि आत्म-प्रत्यय का संरचनात्मक पक्ष ही व्यक्ति के व्यावसायिक चयन का आधार है। व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में सैद्धान्तिक विचारधाएँ विशेष महत्व रखती हैं क्योंकि व्यावसाय के लिए निर्धारक शीलगुणों एवं कारकों अथवा विकास की विभिन्न अवस्थाओं में व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं व्यक्तित्व की संरचना का ज्ञान, निर्देशनकर्ता के प्रभावक निर्देशन नियोजन एवं प्रबन्ध की दृष्टि से आधारभूत है।

व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया -

व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया, मानव को उसे जीवन क्षेत्र में सहायता देने का मूलमंत्र है। निर्देशन की इस प्रक्रिया में तीन तत्व कार्य करते हैं -

1. समयावधि की व्यापकता - व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र पर विचार करते हुए हमने देखा कि व्यावसाय के वरण से लेकर व्यावसाय में प्रगति करने तक का विस्तृत क्षेत्र व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर्गत आ जाता है। व्यावसायिक निर्देशन की जटिलता एवं उलझाव का पहला कारण समय की अवधि की व्यापकता है। जब हम निर्देशन का एक प्रकार मानकर चलते हैं तो उसमें निरन्तरता एवं गतिशीलता का तत्व समाविष्ट हो जात है। व्यावसायिक निर्देशन में व्यक्ति के लिए उपयुक्त व्यावसाय का चुनाव एकदम या शीघ्र ही नहीं किया जा सकता। उसके लिए पर्याप्त समय तक व्यक्ति और व्यावसायिक अवसरों की संगति बिठाने का प्रयत्न किया जाता है।

2. मानव व्यक्तित्व की जटिलता - व्यावसायिक निर्देशन की जटिलता का दूसरा कारण मानवीय व्यक्तित्व की

जटिलता है। सभी व्यक्तियों के व्यक्तित्व की कुछ विशिष्ट विशेषताएँ एवं सीमाएँ होती हैं। उनकी रूचि, योग्यता, स्वभाव एवं इन पर प्रभाव डालने वाले परिवेश भिन्न होते हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति कार्य विशेष या व्यावसाय विशेष के प्रति अपना निजी दृष्टिकोण रखता है, व्यावसायिक तैयारी एवं अपने चुने हुए व्यावसाय के प्रति भी उसके अपने विचार होते हैं। यही नहीं आयु और मानसिक परिपक्वता के क्रम में उसके इन विचारों में अन्तर रहता है। इसी कारण व्यक्तित्व की यह जटिलता व्यावसायिक निर्देशन में भी जटिलता की वृद्धि करती है।

3. परिवर्तन एवं गतिशीलता - तीसरा तत्व जो व्यावसायिक निर्देशन को अपेक्षाकृत जटिल बनाता है, अत्यन्त जटिल और तेजी से बदलते हुए कार्य-क्षेत्रों से सम्बन्धित है। हजारों की संख्या में कार्य-क्षेत्र हमारे सम्मुख उपलब्ध है और उनमें प्रवेश तथा सफलता की सम्भावनाएँ भिन्न-भिन्न हैं। अनेक व्यावसायों के बारे में हमें जानकारी उपलब्ध है जिनकी ओर अनेक व्यक्ति आकर्षित होते हैं किन्तु ऐसे व्यावसाय भी हैं जिनके बारे में जानकारी प्राप्त करने में व्यावसायिक परामर्शदाता और कैरियर मास्टर कठिनाई का अनुभव करते हैं। इसके अतिरिक्त कार्यों के बारे में जानकारी भी पर्याप्त नहीं है।

निष्कर्ष :-

परामर्शदाता या निर्देशक को व्यक्ति की रूचि, क्षमता एवं भावात्मक मन: स्थितियों तथा व्यावसाय में सफलता की दृष्टि से चयन किये जाने वाले व्यावसाय के औचित्य के बारे में भी निर्णय करना होता हैं इस प्रकार व्यावसायों एवं कार्यों की अवस्था, गतिशील एवं परिवर्तनशील प्रकृति भी व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया को जटिल बनाती है। व्यावसायिक परामर्शकर्ता को सर्वप्रथम व्यक्ति की रूचि योग्यता क्षमता तथा व्यावसायिक आकांक्षाओं का ध्यान रखते हुए वर्तमान में सफल एवं प्रचलित व्यावसायों की जानकारी प्राप्त कर व्यक्ति का मार्गदर्शन करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में व्यावसायिक परामर्श की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिसके आधार पर वह अपने व्यावसाय का चुनाव करता हैं। और सफलता प्राप्त कर के सफल जीवन व्यतीत करता हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

- ओबेराय एस. के. (2007) कैरियर निर्देशन एवं कैरियर सूचना, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाडस मेरठ, पृं. सं.- 35.48
- त्रिपाठी एम.एस.(2007) शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श. ओमेगा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, पृ.सं. 33-41
- पाण्डेय वी. (2017) कैरियर निर्णय क्षमता एवं व्यावसायिक आकांक्षाएँ एस आर एफ पब्लिकेशन्स, जबलपुर पृ.सं. 14-18

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं पर स्वप्रत्यक्षीकरण एवं सामाजिक व्यवहार का अध्ययन

श्रीमती दीपा परते *

शोध सार

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं पर स्वप्रत्यक्षीकरण एवं सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करना। शोध अध्ययन में बालाघाट जिले के शासकीय उत्कृष्ट उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के 30 विद्यार्थियों का चयन किया गया। जिनमें 15 छात्र एवं 15 छात्राओं को लिया गया। इन छात्र एवं छात्राओं पर स्वप्रत्यक्षीकरण एवं सामाजिक व्यवहार मापनी जो डॉ. टी. मेहता एवं डॉ. अशोक शर्मा द्वारा निर्मित मापनी को इन पर प्रशासित किया गया। प्राप्त डाटा एवं आंकड़ों के आधार पर परिणाम यह प्राप्त हुआ है, स्वप्रत्यक्षीकरण एवं सामाजिक व्यवहार में छात्र एवं छात्राओं के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है ।

विद्यार्थी देश का भविष्य होते हैं, इनका विकास उचित शिक्षा पर निर्भर होता है। शिक्षा एक अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करती है, और संवारती है। शिक्षा, विद्यार्थियों के जीवन में उचित मूल प्रवत्तियों की ओर जाने के लिए उचित प्रत्यक्षीकरण की अति आवश्यकता होती है। विद्यार्थियों के लिए संज्ञानात्मक, कौशलों, संवेगों, शीलगुणों एवं अभिवृत्ति के निर्माण की आवश्यकता है। इन सभी से विद्यार्थियों को प्रत्यक्षीकरण के लिए प्रेरित किया जा सकता है, जिससे विद्यार्थी समाज के व्यक्तियों से व्यावहारिक संबंध अच्छे बनाए रखें।

स्वप्रत्यक्षीकरण व्यक्ति की भावनाओं, विशेषताओं एवं उनके शीलगुणों का प्रत्यक्षीकरण किस प्रकार करता हैं? व्यक्ति किस प्रकार से स्वयं के सूचना संकेतों के आधार पर अपने समक्ष व्यक्ति के व्यक्तित्व का अनुमान लगाता है, क्योंकि व्यक्ति की अभिवृत्ति का निर्माण उसके व्यवहार और व्यक्तित्व से ही पूर्ण होता है। व्यक्ति के लिए स्वयं को जानना समझना और अपने आप की सही छवि निर्मित करना एक अत्यंत जटिल कार्य हैं, क्योंकि अन्य व्यक्तियों के संदर्भित किए बिना अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, अभिप्रेरणाओं भावनाओं अभिवृत्तियों, न्यूनताओं तथा अपने संवेगो का सही मूल्यांकन करना व्यक्ति के लिए अत्यंत कठिन कार्य है। व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के अनुसार स्वयं की प्रवृत्तियों का निर्माण, आंतरिक ज्ञान तथा चित्त अवस्थाओं का मूल्यांकन करता है।

स्वप्रत्यक्षीकरण में आवश्यक यह नहीं की व्यक्ति की सांवेदानिक अनुभूतियों पर ही निर्भर रहें, बल्कि ये अन्य व्यक्ति से प्राप्त सूचनाओं पर निर्भर होता है, क्योंकि स्वप्रत्यक्षीकरण व्यक्ति की अंत:क्रियाओं को समझने में एक महत्वपूर्ण प्रत्याशा होती है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के बारे में मन में जो विचार भावनाएँ अभिप्रेरणाओं को देखकर जो छवि निर्मित करता है, उसी के आधार पर व्यक्ति अपने सम्मुख व्यक्ति के व्यक्तित्व की धारणा बनाकर उसका मूल्यांकन कर किसी भी प्रकार का निर्णय लेना ही प्रत्यक्षीकरण कहलाता है।

बैरन और बाइरनी (2004) के अनुसार– 'स्वप्रत्यक्षीकरण वह प्रक्रिया है। जिसके द्वारा हम लोग अपनी मात्राओं शीलगुणों और प्रेरकों को जानते है। लोग बहुधा अपने बाह्य व्यवहार के आधार पर अनुमान लगाते है।'

***शोधार्थी, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर म. प्र.**

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है, कि व्यक्ति के लिए प्रत्यक्षीकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति प्रत्यक्षीकरणकर्ता स्वयं अपने बाह्य व्यवहार के आधार पर अपनी भावनाओं, शीलगुणों और प्रेरकों को जानने का प्रयास करता है। व्यक्ति अपने विचारों, भावनाओं, अभिप्रेरकों, रूचियों एवं अभिवृत्तियों की जानकारी कैसे प्राप्त करता है? व्यक्ति जिस प्रकार अपने सम्मुख व्यक्ति के बारे में सूचना एकत्र करता है, उसी के अनुसार उसके व्यक्तित्व की छवि का निर्माण करता है।

कभी–कभी व्यक्ति अपने विचार मत या योग्यता का मूल्यांकन सामाजिक वास्तविकता के आधार पर करता हैं। सामाजिक वास्तविकता का तात्पर्य इस समझदारी से हैं, कि दूसरे लोग सामान्यत: कैसे सोचते हैं या महसूस करते हैं? व्यक्ति में अपने विचार मत या योग्यता के मूल्यांकन की मौलिक प्रवृत्ति पाई जाती हैं, और वह इसके लिए अपने समान दूसरों के द्वारा प्रस्तुत सामाजिकता वास्तविकता का उपयोग करता हैं। बेम ने अपने सिद्धांत में लिखा हैं, कि हम अपने मनोवृत्तियों, संवेगों भावों को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान पाते हैं, बल्कि अपने व्यवहारों के आलोक में ही उनकी जानकारी हासिल कर पाते हैं तथा उनके संबंध में कोई धारणा बनाते हैं।

अंत:व्यक्तित्व संबंधो की सफलता के लिए पर प्रत्यक्षीकरण के साथ.साथ स्वप्रत्यक्षीकरण भी आवश्यक हैं। यह एक सामान्य विश्वास हैं की अपने को जानना बहुत आसान हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको अच्छी तरह जानता हैं, लेकिन यह विश्वास गलत हैं। सच तो यह है, कि दूसरों को जानने की अपेक्षा अपने आप को जानना अधिक कठिन हैं। ''मैं कौन हूँ .....?''

भारतीय दर्शन की यह एक बहुत गहन समस्या कल भी थी, आज भी और संभवत: कल भी रहेगी। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक भी इस विचार से सहमत हैं, कि दूसरे व्यक्ति की अपेक्षा अपनी मनोवृत्तियों, विश्वास तथा भावनाओं को जानने के लिए अधिक प्रयास की आवश्यकता हैं। जो व्यक्ति जिस हद तक स्वमूल्यांकन में सफल होता हैं, वह उसी हद तक दूसरों के साथ सामाजिक समायोजन स्थापित करने में सफल होता है।

स्वप्रत्यक्षीकरण के गुण –

- स्वप्रत्यक्षीकरण में आंतारिक प्रेरकों या आंतरिक पुस्कारों को समझने में मदद मिलती हैं। इससे स्वप्रत्यक्षीकरण करने वाले व्यक्ति को अधिक संतुष्टि मिलती है। और नकारात्मक प्रभाव कमजोर हो जाता हैं।
- इसके आलोक में व्यक्ति को अपनी मनोवृत्ति या भाव को समझने तथा मूल्यांकन करने में बहुत हद तक सहायता मिल सकती हैं।
- स्वप्रत्यक्षीकरण के संदर्भ में धनात्मक प्रभाव तथा नकारात्मक प्रभाव की व्याख्या करने में सफल हैं। इसमें घटित होने वाली विशेष घटना, जिसे अतितार्किकरण (over justification) कहा जाता हैं, व्याख्या करने में सफल हैं।

दोष –

- स्वप्रत्यक्षीकरण के आधार पर स्वरूप ठीक–ठीक स्पष्ट नहीं हो पाता हैं, क्योंकि यह आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण पर आधारित हैं।
- स्वप्रत्यक्षीकरण प्रयोगात्मक आधार पर सफल नहीं हैं। इस सिद्धांत की मान्यताओं के पक्ष में अनुभाविक अध्ययन का भारी अभाव हैं।

समाज में व्यक्ति सदैव दूसरों का साथ ढूँढता रहता हैं। किसी भी व्यक्ति में साथ या समूहों में घुलने मिलने की प्रवृति उसके व्यवहार में ही निहित होती हैं, क्योंकि दूसरे व्यक्तियों से अलग-अलग क्षेत्रों में मिलता जुलता रहता है। वह विभिन्न व्यक्तियों के संपर्क में आता है, और अनेक व्यक्तियों के व्यक्तित्व विचारों, दृष्टिकोण एवं मत सें प्रभावित हो जाता है। दूसरे व्यक्तियों के अनेक प्रतिक्रियों और व्यवहारों से प्रभावित हो जाता हैं, प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है, कि वह इस प्रकार के व्यवहार का आदर करें, और महत्वपूर्ण समझें, क्योंकि मानव की सामाजिक प्रकृति ही सामाजिक मनोविज्ञान की आधारशिला हैं।

हरलॉक के अनुसार 'सामाजिक व्यवहार का अर्थ है – सामाजिक संबंधों में परिपक्वता प्राप्त करना हैं।'

मोरेनसन के अनुसार 'सामाजिक व्यवहार का अर्थ हैं – अपनी और दूसरों की उन्नति के लिए योग्यता की वृद्धि हैं।'

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता हैं, कि किसी व्यक्ति का व्यवहार उन के दृष्टिकोण, मूल्यों, मान्यताओं और दैनिक प्रव्रतियों पर निर्भर करता है। सामाजिक व्यवहार अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करता हैं। मनुष्य का सामाजिक व्यवहार स्वयं की सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करता हैं सामाजिक परिस्थितयाँ चार प्रकार की होती हैं:-

- व्यक्ति तथा व्यक्ति के बीच।
- व्यक्ति तथा समूह के बीच।
- व्यक्ति तथा सामाजिक संस्था के बीच तथा।
- व्यक्ति तथा संपूर्ण समाज के बीच।

व्यक्ति चाहे दूसरें व्यक्ति के प्रति व्यवहार करता हो, प्राथामिक समूह के प्रति व्यवहार करता हो, द्वितीयक समूह के प्रति व्यवहार करता हों, चाहे संपूर्ण समाज के प्रति व्यवहार करता हो उन सभी व्यवहारों का संबंध समाज मनोविज्ञान से हैं। सामाजिक व्यवहारों अथवा समाजिक पारस्परिकता का अध्ययन किया जाता हैं, वे संगठित तथा उद्देश्य निर्देशित होती है। पारस्परिक क्रिया या सामाजिक व्यवहार वास्तव में व्यक्ति के संवेगों, विचारों, स्मृतियों, संज्ञानों आदि का संगठित परिणाम हैं, यह व्यवहारों वास्तव में उद्देश्यपूर्ण होता हैं।

उद्देश्य -

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रों पर स्वप्रत्यक्षीकरण का अध्ययन।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्राओं पर स्वप्रत्यक्षीकरण का अध्ययन।
3. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रों पर सामाजिक व्यवहार का अध्ययन
4. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्राओं पर सामाजिक व्यवहार का अध्ययन।

परिकल्पना -

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के स्वप्रत्यक्षीकरण मे कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्राओं के स्वप्रत्यक्षीकरण में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
3. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के सामाजिक व्यवहार मे कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

4. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्राओं के सामाजिक व्यवहार मे कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

न्यादर्श – प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के 30 विद्यार्थियों को लिया गया, जिनमें 15 छात्र एवं 15 छात्राओं को लिया गया, इन विद्यार्थियों पर स्वप्रत्यक्षीकरण एवं सामाजिक व्यवहार मापनी को प्रशासित किया गया हैं।

उपकरण – स्वप्रत्यक्षीकरण मापनी – डॉ. टी. मेहता द्वारा निर्मित।

सामाजिक व्यवहार मापनी – डॉ. अशोक शर्मा द्वारा निर्मित।

विधि – प्रस्तुत अध्ययन में बालाघाट जिले के शासकीय उत्कृष्ट उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के 30 विद्यार्थियों पर 15 छात्र एवं 15 छात्राएं स्वप्रत्यक्षीकरण एवं सामाजिक व्यवहार मापनी को प्रशासित किया गया हैं। मापनी को अंकित करने के पश्चात् प्राप्तांकों का सांख्यिकीय विश्लेषण मध्यमान (Mean), प्रमाणिक विचलन (SD), एवं टी परीक्षण द्वारा किया गया हैं।

तालिका क्रंमाक 1

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं पर स्वप्रत्यक्षीकरण संबंधी परिणाम एवं व्याख्या

क्र.	चर	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	't' परीक्षण	सार्थकता का स्तर
1	छात्र	15	22.2	9.16	0.26	सार्थक अंतर नहीं पाया गया
2	छात्राएं	15	23	6.72		

स्वतंत्रता के अंश 28

0.05 स्तर पर न्यूनतम मान 2.05

0.01 स्तर पर न्यूनतम मान 1.05

परिणाम – उपरोक्त तालिका क्रमाक 1 में प्रदर्शित परिणामं से स्पष्ट होता है, कि शासकीय उत्कृष्ट उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के मध्य स्वप्रत्यक्षीकरण मे कोई सार्थक अंतर नही पाया गया।

तालिका क्रमांक 2

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं पर सामाजिक व्यवहार संबंधी परिणाम एवं व्याख्या

क्र.	चर	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	't' परीक्षण	सार्थकता का स्तर
1	छात्र	15	144	294.97	0.25	सार्थक अंतर नहीं पाया गया
2	छात्राएं	15	2574	741.72		

स्वतंत्रता के अंश 28

0.05 स्तर पर न्यूनतम मान 2.05

0.01 स्तर पर न्यूनतम मान 1.05

परिणाम – उपरोक्त तालिका क्रमांक 2 में प्रदर्शित परिणाम से स्पष्ट होता है, कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के मध्य सामाजिक व्यवहार मे कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

उपरोक्त परिणामों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है, कि छात्र एवं छात्राओं को प्रत्यक्षीकरण को समझने के साथ.साथ विद्यार्थियों को स्वप्रत्यक्षीकरण सीखना आवश्यक है। स्वप्रत्यक्षीकरण के अनुसार व्यक्ति के वास्तविकता को प्रत्यक्ष करने और किशोरावस्था में व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्तियों के लिये सेवा कार्य को नियमित रूप से करने एवं उनके व्यवहार तथा प्रतिक्रिया में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन होने से इन छात्र एवं छात्राओं का भविष्य सही प्रकार से सक्षम हो सकता है। सामाजिक व्यवहार छात्र एवं छात्राओं की व्यावहारिकता को प्रदर्शित करता है। सामाजिकता बहुत कुछ पारिवारिक संबंध एवं परिवार के सदस्यों के आपसी संबंधों पर निर्भर करती हैं। इससे विद्यार्थियों के पारस्परिक क्रिया, आंतारिक संबंध, संवेगों, संज्ञानों, विचारों एवं स्मृतियों को सजग रखी जा सकती हैं।

भट्ट, शब्बीर अहमद (2014) ने सामान्य बालक बालिकाओं में स्वप्रत्यक्षीकरण और शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया, परिणामस्वरूप सामान्य बालकों का स्वप्रत्यक्षीकरण आलिकाओं की अपेक्षा अच्छा पाया गया और बालक एवं बालिकाओं में शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नही पाया गया हैं।

निष्कर्ष -

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रों में स्वप्रत्यक्षीकरण मे कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं में स्वप्रत्यक्षीकरण में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
3. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रों में सामाजिक व्यवहार मे कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
4. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं में सामाजिक व्यवहार में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. सिंह, अरूण कुमार (1991) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसी दास, चतुर्थ संबोधित नवीनतम् संस्करण।
2. श्रीवास्तव, डी. एन. (2009) मनोविज्ञान अनुसंधान एवं मापन, आगरा विनोद पुस्तक मंदिर चतुर्थ संस्करण।
3. त्रिपाठी, प्रो. लाल बच्चन (2003) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, आगरा एच. पी.भार्गव बुक हाउस द्वितीय संस्करण।
4. कपिल, ए एच. के. (1995) सांख्यिकी के मूल तत्व, आगरा विनोद पुस्तक मंदीर नवीनतम संस्करण।
5. वर्मा, प्रीती एवं श्रीवास्तव, डी. एन. (2005) - आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, प्रकाशन विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
6. सुलेमान, मुहम्मद (2012) - उच्चतर समाज मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, द्वितीय एवं परिवर्द्धित संस्करण।

शिक्षा का व्यावसायीकरण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

*प्रो. डॉ. शोभा सिंह**

शोध सार

हमारे चारों और का भौतिक परिवेश, हमारे दैनिक कार्यों के यंत्र, हमारे खाने-पीने के संबंधित खाद्य पदार्थ यहां तक कि कभी-कभी तो हमारी सांस की हवा तक भी सभी तकनीकी विकास के परिणाम स्वरूप ही संभव हो पाती है। इसी प्रकार किसी भी राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि उसका जीवन स्तर उसकी सम्भावित वृद्धि और उसकी सुरक्षा सभी कुछ उस राष्ट्र की तकनीकी शिक्षा व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण तंत्र की दक्षता और उस तंत्र के लिए वह राष्ट्र किस मात्रा तक कार्य करने और धन जुटाने को तैयार है इस पर निर्भर करते है। किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास में तकनीकी शिक्षा एक आवश्यक कारक होती है। इतना ही नहीं इस शिक्षा का विकास कुछ ही क्षेत्र में अधिक हुआ तथा कुछ स्तर अभी भी इस क्षेत्र से अछूते है इसके अतिरिक्त अक्सर ऐसा होता है कि इस विषय के विशेषज्ञ को अपने स्वयं के देश के प्रशिक्षण तंत्र की जटिलताओं की तो पूरी जानकारी होती है। परन्तु अपने देश की सीमाओं के बाहर पड़ोसी देश में क्या कुछ हो रहा हैं इसके बारे में लगभग कुछ भी जानकारी नहीं होती। जिन व्यक्तियों का कार्य तकनीकी शिक्षा पर अनेक विकास शील देशों को सलाह देना है। यदि वे व्यक्ति अनेक देशों में अनेक विभिन्न योजनओं के अनुभव या ज्ञान से लाभ उठा सके तो वे अधिक सुदृढ़ स्थिति में हो जायेंगें।

औद्योगिक प्रशिक्षण विश्वविद्यालयीन अध्ययन, वयस्क शिक्षा, सामान्य माध्यमिक शिक्षा और अध्यापक प्रशिक्षण में बहुत सम्भावनाएँ हैं अध्यापक प्रशिक्षण तो अपने आप में एक विशाल क्षेत्र है। तकनीकी और विशाल व्यावसायिक शिक्षा को समग्र शिक्षा के साथ-साथ उसके द्वारा भी व्यक्तित्व और चरित्र के विकास की व्यवस्था की जानी चाहिए आर समझने की क्षमता नीर, क्षीर विवेक और परिवर्तनशील परिवेश के अनुकूल अपने को ढालने के गुणों का पोषण किया जाना चाहिए।

उद्देश्य - सामान्य शिक्षा का उद्देश्य मन का तिरस्कार कर उसका संसार से सामंजस्य स्थापित करना होता है। जबकि तकनीकी शिक्षा का उद्देश्य भौतिक संसार में इस प्रकार के परिवर्तन लाना होता है कि वह मन की आकांक्षाओं के अनुकूल हो जाये। शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है, जो किसी समाज अथवा राष्ट्र की शिक्षा के उद्देश्य उसके जीवन दर्शन, संस्कृति उसकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं पर आधारित होती है। शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न विषयों एवं कौशलों के उद्देश्य अथवा लक्ष्य के स्वरूप भी भिन्न होते हैं। जिन व्यक्तियों, शक्तियों, साधनों के द्वारा शिक्षण की व्यवस्था की जाती है उन्हें शिक्षण के अभिकरण कहते है। मुख्य रूप से ये पांच अभिकरण है जिनके माध्यम से बालक के विकास की अर्थात् शिक्षण की प्रक्रिया संपन्न होती है। इन पांच अभिकरणों में परिवार, विद्यालय, पाठ्यक्रम, शिक्षक या आचार्य एवं शिक्षण पद्धति को समाहित किया गया है।

शिक्षा के ये अभिकरण बालक के सर्वांगीण विकास में बहुत आवश्यक है इनमें से किसी एक के ना होने से भी बालक का विकास अधूरा ही रह जाता है। शिक्षा का व्यावसायीकरण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाये तो सर्वत्र नजर आता है। प्राचीन गुरूकूल शिक्षा की प्रमुख विशेषता है, प्राविधिक शिक्षा एवं शिक्षा का व्यावसायीकरण। आज विद्यार्थी परम्परावादी शिक्षा को छोड़कर एम.बी.ए, कम्प्यूटर शिक्षा बी.बी.ए, बी.सी.ए., एम.सी.ए. आदि तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर

***प्राचार्य, नवयुग कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)**

शीघ्र रोजगार प्राप्त करना चाहता है या किसी व्यावसाय में जाना चाहता है। यदि उच्च शिक्षा प्राप्त कर कहीं नौकरी नहीं लगी तो वह कोंचिग या ट्यूशन करके पैसे कमाता है। आज कोंचिग का कारोबार बहुत तेजी से फै ल रहा इनकी अपनी शाखाएँ तक है, इनमें लाखों बच्चे पढ़तें है और अपना भविष्य बनाने का प्रयास करते है। सरकार भी शिक्षा के इस व्यावसायीकरण पर मौन स्वीकृति प्रदान कर रही है। प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक शिक्षा का व्यावसायीकरण हो रहा है। प्राथमिक स्तर का बालक भी ट्यूशन प्राप्त करके पास होना चाहता है उसके अभिभावक भी यही चाहते है कि बालक अच्छे से अच्छे नम्बर प्राप्त करे। चाहे इसके लिए उन्हें कितने भी पैसे खर्च करने पड़ें। आज सभी अभिभावक प्राइवेट स्कूलों में बालक को पढ़ाना चाहते है शासकीय विद्यालयों में अध्ययन अध्यापन की कमियां सभी जानते है। इसी बात का फायदा उठा कर प्राइवेट स्कूल के प्रबंधक इसके लिए मोटी रकम वसूल करते है।

आज वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विशेष प्रकार की व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा द्वारा दक्षता एवं कौशल विकसित करने पर जोर दिया जा रहा है। विज्ञान, तकनीकी, इंजीनियरिंग, चिकित्सा एवं विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से प्रशासनिक सेवाओं में शामिल होने हेतु शिक्षा संपूर्ण भारत एवं विश्व में विशेष महत्व प्राप्त करती आ रही है। किन्तु खेद का विषय यह है कि शिक्षा के व्यावसायीकरण का जीवन मूल्यों पर नकारात्मक प्रभाव देखने में आ रहा है। एक सभ्य समाज के लिए शिक्षा यदि प्राण है तो जीवन मूल्य उसकी आत्मा। शिक्षा ज्ञान का वह अस्त्र है जो अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों का सर्वांगीण विकास करना है सर्वांगीण विकास का अभिप्राय शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, भावात्मक, सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों का विकास करना है। अब प्रश्न यह उठता है कि 'आधुनिक शिक्षा के द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास हो रहा है या नहीं'।

व्यावसायिक शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - वास्तव में व्यावसायिक शिक्षा बुनियादी शिक्षा का ही परिष्कृत रूप है - महात्मा गॉधी के स्वप्नों को यथार्थता के धरातल पर इस शिक्षा के जरिये ही लाया जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षा जन तांत्रिक भावना विकसित करने के साथ -साथ सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के लिए सफल होगी। व्यावसायिक शिक्षा व्यक्ति में निहित शक्तियों को विकसित करके उसे समाज उपयोगी बनाने में सफल होगी। ऐसी शिक्षा से मनुष्य अपने वैज्ञानिक परिवेश को भली-भांति समझने और अपने को उसके अनुरूप ढालने में समर्थ होगी। यह शिक्षा व्यक्ति को रोजगार प्राप्त करने या स्वतंत्र रूप से अपनी जीविका अर्जित करने में सहायक होती है। शिक्षाविदों के प्रयासों से भारत में शिक्षा के व्यावसायीकरण का प्रारंभ वर्ष 1976 से ही गया था। तथापि व्यावसायिक शिक्षा को सही स्वरूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में ही मिल सका। संपूर्ण राष्ट्र में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा क्रियान्वयन 1987-88 से प्रारंभ हुआ, जिसने अपने उद्देश्यों में व्यक्गित समृद्धि राष्ट्रीय आय एवं उत्पादकता में वृद्धि कुशल मानव शक्ति की उपलब्धता तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि, इत्यादि को समाहित किया। समय-समय पर शिक्षा को उपयोगी एवं बहुआयामी बनाने हेतु स्वतंत्र भारत में विभिन्न आयोगों का गठन किया गया। आयोगों द्वारा दिये गये सुझावों को दृष्टिगत रखते हुए देश की सभी पंचवर्षीय योजनाओं में प्राविधियक एवं व्यावसायिकरण से मूल्यों का हास हुआ है। आलपोर्ट का मत है कि मूल्य एक मानव विश्वास है जिस पर मनुष्य वरीयता प्रदान करते हुए कार्य करता है। मूल्य वे मानदंड होते है जिनके द्वारा लक्ष्यों का चुनाव किया जाता है, ऐसी बातें जिसे मन स्वीकार करता हो जिसे करने के लिए प्रेरित करता हो मूल्य होते है। मूल्य हमारे जीवन के पथ प्रदर्शक सिद्धांत है जो केवल व्यक्ति का ही नहीं संपूर्ण समाज का कल्याण भी करते है।

हमें सुनिश्चित करना होगा कि उनके सदुपयोग या उनकी अभिव्यक्ति के अवसर उपलब्ध करायें जा सकें ताकि उनकी ऊर्जा कार्य में केन्द्रित हो। व्यावसाय व्यक्ति की जीवन शैली निर्धारित करता है। व्यावसाय पर न केवल समय, अपितु समाज का सामाजिक, आर्थिक स्तर प्रभावित होता है जो व्यावसाय की विशेषताओं पर अधिक निर्भर करता है। शिक्षा का

स्तर प्रशिक्षण एवं आय जैसी व्यावसायिक विशेषताओं पर अधिक निर्भर करता है। विशेषताएँ वर्ग विशेष के आर्थिक स्तर में प्रमुख भूमिका निभाती है। तथा आगे भी निभाती रहने के साथ व्यक्ति की अभिरूचियों एवं उनके समाज की भी पहचान कराने में प्रमुख है। इस प्रकार आधुनिक समाज में व्यक्ति का स्तर उसके व्यावसाय से जुड़ा हुआ है। व्यक्ति की प्रकृति मूलत: सामाजिक है। कार्य स्थिति किसी व्यक्ति को एक सामाजिक समूह व सामाजिक परिवेश प्रदान करती है। यदि कार्य अनुकूल एवं संतोषजनक वातावरण प्रदान करने में सक्षम हो तो व्यक्ति उस कार्य में भाग लेते रहने के लिए प्रेरित होता है। अत: मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, आवश्यकताएँ, बौद्धिक स्तर तथा शैक्षिक उपलब्धि व्यक्ति के वृत्ति प्रतिरूप (कैरियर पेटर्न) को प्रभावित करते है। सीखने से सृजनात्मकता आती है। सृजनात्मकता से चिन्तन आता है, चिन्तन ज्ञान प्रदान करता है, ज्ञान उन्हें महान बनाता है।

भारत में शिक्षकों की प्रभावोत्पादकता को बढ़ाने के लिए यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि उनमें व्यावसायिकता का विकास किया जाये। आधुनिक युग में शिक्षा सभी देशों में एक अत्यंत महत्वपूर्ण क्रियाकलाप बन गई है। भारत में आज शिक्षा पर कई हजार करोड़ रुपये प्रतिवर्ष सरकार द्वारा और कई हजार करोड़ अन्य गैर –सरकारी संस्थाओं द्वारा व्यय किये जाते है। भारत में लाखों पाठशालाएँ है। और लगभग छ: लाख से भी अधिक शिक्षक है, जो कि भारत की सेना की संख्या से भी अधिक है। सभी शिक्षक अपने कार्य के प्रति पूर्णतया तैयार नहीं है उनमें कुछ न्यूनताएँ है। उनमें वर्तमान आधुनिक युग और तेजी से आ रहे भविष्य की चुनौतियों को समझने और उनके संदर्भ में कुशलता पूर्वक कार्य करने की क्षमताओं को विकसित करने की आवश्यकता गम्भीरता पूर्वक महसूस की जा रही है।

किसी भी शिक्षक को स्वयं अपने प्रयासों से ही विकास कर पाना न तो संभव है और न उचित। वर्तमान विकासोन्मुख समाज में शिक्षकों को व्यावसायिक कार्यकर्ता बनाया जाना आवश्यक है, इसके लिए सरकारों, समाज की अन्य संस्थाओं व संगठनों तथा शिक्षक संघों को बहुत सक्रिय भूमिका निभानी आवश्यक है। जिसके लिए सरकार ने विभिन्न प्रयास किए है जैसे–

1. शिक्षकों के वेतनमान निर्धारित किए है।
2. शिक्षकों को प्रशिक्षण प्राप्त करना अनिवार्य है।
3. नियुक्त के लिए शिक्षकों का चुनाव राज्य के सेवा आयोग अथवा किस अन्य जिम्मेदार संस्था के द्वारा किया जाता है।
4. सेवा काल में सरकारी शिक्षकों को अपनी योग्यताएँ। बढ़ाने के लिए अध्ययन अवकाश पूर्ण वेतन पर दिया जाता है।
5. सेवारत शिक्षकों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर NCERT राज्य स्तर पर SCERT एवं DIET द्वारा ऐसे कई प्रकार कार्यक्रमों को प्रत्येक वर्ष आयोजित किये जाते है।
6. कई कुशल शिक्षकों को राष्ट्रीय और राज्य स्तरों पर नगद धन राशि तथा प्रशस्ती पत्र देकर सम्मानित किया जाता है।
7. शिक्षकों को पुस्तकें लिखने, अनुसंधान, मौलिक लेख आदि के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।
8. शिक्षकों का प्रशिक्षण उत्तम और विश्व की आधुनिक गतिविधियों और प्रतिमानों के अनुसार हो सके तथा प्रशिक्षण संस्थाओं पर गुणात्मक नियंत्रण बनाए रखा जा सके इसके लिए NCTE की स्थापना दिल्ली में हुई थी तथा NCERT शाला शिक्षकों के लिए (National Council of Education Research and Training) शिक्षक मार्गदर्शिकाएँ

तैयार करती है।

9. शिक्षकों को व्यावसायिक अनुभव बढ़ाने के लिए विदेशों में उच्च अध्ययन के लिए जाने दिया जा रहा है।

व्यावसायिक शिक्षा एवं शिक्षा के विविध आयाम – दूरस्थ शिक्षा, पत्राचार शिक्षा, उन्मुक्त या खुला विश्वविद्याालय, समुदाय सेवा और शिक्षा, नवोदय विद्याालय, आदि के द्वारा भी शिक्षा प्राप्त की जा सकती है। भारत की जनसंख्या 124 करोड़ को पार कर गई है। इतनी बड़ी आबादी के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था करना सिर्फ सरकार के भरोसे सम्भव नहीं हैं। इसके निष्पादन हेतु सरकार ने निजी क्षेत्रों की भागीदारी भी इस क्षेत्र में सुनिश्चित की है। इस प्रकार शिक्षा के निजीकरण का अर्थ है। शिक्षा के क्षेत्र में सरकार के अतिरिक्त गैर सरकारी भागीदारी। वैसे तो ब्रिटिश काल से ही निजी संस्थाएं शिक्षण कार्य में संलग्न थीं किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद निजीकरण को बढ़ावा देने के लिए अनुदान एवं सरकारी सहायता के फलस्वरूप भारत में निजी शिक्षण संस्थाओं की बाढ़ सी आ गई है। स्थिति अब ऐसी हो गई है कि उस पर अंकुश लगाने की आवश्यकता महसूस होने लगी है, क्योंकि अधिकतर शिक्षण संस्थाएँ धन कमाने का केन्द्र बनती जा रही है। एवं इनके द्वारा छात्र एवं अभिभावकों का शोषण हो रहा है।

शिक्षा के निजीकरण के यदि कुछ गलत परिणाम सामने आएँ है। तो इससे लाभ भी निश्चित तौर पर हुआ है। शिक्षा के निजीकरण के कारण तेजी से शिक्षा का प्रसार हो रहा है। जिन लोगों को प्रतियोगी परीक्षाओं में असफल रहने के कारण किसी व्यावसायिक या अन्य पाठ्यर्क्रम में प्रवेश नहीं मिल पाता वे अधिक धन खर्च करके मनवांछित शिक्षा प्राप्त कर सकते है। इस तरह शिक्षा के निजीकरण के कारण देश का धन सकारात्मक कार्यो में संलग्न रहा है। नई शिक्षा संस्थाओं की स्थापना के कारण नवयुवकों को रोजगार के नए अवसर उपलब्ध हो रहे है। शिक्षण से संबंधित व्यावसायों को भी गति मिलती रही है। निजी शिक्षण संस्थाओं में प्रतिभावान छात्रों का ही अवसर मिलता है। पिछले कुछ वर्षों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले लोगों की संख्या में भी वृद्धि हुई है एवं उन्हें रोजगार के अवसर भी उपलब्ध हो रहे है। शिक्षा के निजीकरण के कारण देश के विकास का भी गति मिल रही इतना ही नहीं निजी प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप शिक्षा की गुणवत्ता में भी सुधार हो रहा है। निजी शिक्षण संस्थाओं में योग्य शिक्षकों को अच्छे वेतनमान पर भर्ती किए जाने से शिक्षकों की दशा में सुधार के साथ शिक्षित लोगों के लिए रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध हो रहे है। इस तरह शिक्षा की गुणवत्ता एवं शिक्षकों की दशा सुधारने की दृष्टि से शिक्षा के निजीकरण को बढ़ावा देना उचित है।

वर्तमान परिदृश्य और शिक्षा – निजीकरण से यदि लाभ हुए है तो इसके नुकसान भी कम नहीं है शिक्षा में निजीकरण के कारण स्थिति अब ऐसी हो चुकी है कि इस पर अंकुश लगाने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है क्योंकि अधिकतर निजी शिक्षण संस्थाएँ रेवड़ियों की तरह डिग्रियों बांट रहें हैं । शिक्षा आज व्यापार का रूप धारण कर चुकी है शिक्षा के निजीकरण का लाभ निर्धन लोगों को नहीं मिल रहा है। शहरों के निजी विद्याालयों में प्राथमिक स्तर की कक्षाओं में भी छात्रों से एक से पांच हजार रुपये प्रतिमाह शुल्क लिया जाता है। आम आदमी इतना शुल्क देने में अक्षम है। शिक्षा के निजीकरण के कारण कोचिंग एवं ट्यूशन को बढ़ावा मिल रहा है।

शिक्षा के व्यावसायीकरण से भारत में निजी शिक्षण संस्थाओं की बाढ़ सी आ गई है। किंतु लाखों की संख्या में मौजूद इन निजी शिक्षण संस्थाओं में से अस्सी प्रतिशत संस्थान या तो शिक्षण की गुणवत्ता के पैमाने पर खरे नही उतरते या या फिर उनके पास पर्याप्त मात्रा में शैक्षिक संसाधन नहीं है इन सबसे अतिरिक्त निजीकरण के कारण फर्जी शिक्षण संस्थाओं की संख्या भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है जो चिंता का विषय है इस तरह निजी क्षेत्र में प्रबंधन की अक्षमता एवं मनमानी के कारण न तो शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हो पा रही है। और न ही गुणवत्ता के पैमाने पर ये खरे उतर पा रहे है। इसके साथ

ही निजी क्षेत्र में शैक्षिक संस्थाओं द्वारा शोषण एवं गलत मार्गदर्शन के कारण लाखों छात्रों का भविष्य अंधकारमय हो रहा है।

पहले धनी व्यक्तियों द्वारा शिक्षण संस्थाओं की स्थापना सामाजिक सहयोग एवं समाज के प्रति अपने दायित्व निभाने के लिए कि जाती थी अब इसका उद्देश्य सामाजिक सहयोग न होकर धनार्जन हो गया है इसलिए शिक्षा के निजीकरण के जो लाभ होना चाहिए वह समुचित मात्रा में समाज को प्राप्त नहीं हो रहा। यदि शिक्षा के निजीकरण में मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति पर रोक लगाई जाए एवं शिक्षकों की सेवा शर्तो का संरक्षण सरकार द्वारा हो तो शिक्षा के निजीकरण के लाभ वास्तविक रूप में मिल पाऐंगे। शिक्षा की अनिवार्यता के दृष्टिकोण से इसके सार्वभौमीकरण की बात की जा रही है। इस कार्य में निजी सहभागिता अनिवार्य है। इसलिए शिक्षा का निजीकरण तो अनिवार्य है किंतु इसमें इस बात का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए कि शिक्षा के उद्देश्य बाधित न हो। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालकों का सर्वांगीण विकास हो अभिभावको पर आर्थिक बोझ कम आए एवं शिक्षा समाजोपयोगी हो तभी शिक्षा निजीकरण का लाभ सही अर्थो में देश और समाज को मिल सकेगा।

निष्कर्ष – महात्मा गांधी का मत था कि शिक्षा के माध्यम से व्यक्तियों को स्वयं विवेक आना चाहिए कि क्या चीज ग्रहण की जाये और क्या चीज ग्रहण ना की जाये हम विचारवान प्राणी है। इसलिए हमें इस काल में सत्य और असत्य का मधुर और कटु भाषण का शुद्ध और अशुद्ध वस्तुओं का अंतर मालूम होना चाहिए इसलिए शिक्षा को केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित न रखकर जीवन से संबंधित किया जाये उसे राष्ट्रीय जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बनाया जाये। व्यावसायिकरण के द्वारा ही छात्रों में आत्म निर्भरता एव स्वालम्बन की भावना उत्पन्न की जाए। यह आत्मनिर्भरता आर्थिक एवं शारीरिक दोनों ही दृष्टि से होनी आवश्यक है अतः छात्रों में शारीरिक श्रम के प्रति भी आस्था उत्पन्न की जानी चाहिए। जिससे शिक्षार्थी का सर्वांगीण विकास किया जा सके। आधुनिक शिक्षा में परिलक्षित होने वाला एक मुख्य परिवर्तन यह है कि व्यावसायिक शिक्षा पर अधिक बल दिया जा रहा है। परिणाम स्वरूप यह आवश्यक हो गया है कि विभिन्न व्यावसायों के लिए प्रारंभ से ही ऐसे विद्यार्थियों का तैयार किया जाये, जो कालान्तर में इस आवश्यकता की पूर्ति कर सके। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर हम इसके महत्व को स्वीकार कर सकते है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. शिक्षा में नवाचार और नवीन प्रवृत्तियाँ- लेखक, भाई योगेन्द्र जीत।
2. विकासोन्मुख भारतीय समाजः शिक्षक और शिक्षा लेखक, प्रो. एस.सी. रूहेला।
3. व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा – लेखक, ह्यू वारेन, यूनेस्को।
4. विघा भारती की अभिनव पंचपदी- लेखक, लज्जाराम तोमर।
5. अनुसंधान शोध त्रैमासिक पत्रिका, अलीगढ़।
6. नई शिक्षा पद्धति आगरा मासिक पत्रिका, अप्रैल 2016।

मूक-बधिर छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं समायोजन क्षमता का अध्ययन

*श्रीमती प्रियंका साहू**

शोध सार

प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य मूक-बधिर बालक-बालिकाओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं समायोजना क्षमता का अध्ययन करना हैं। अध्ययन में जबलपुर शहर के मूक-बधिर विद्यालयों से संभव न्यादर्श विधि द्वारा कक्षा 5 व 8 के बालक एवं बलिकाओं को लिया गया। अध्ययन हेतु स्वानिर्मित मूक-बधिर शैक्षिक उपलब्धि परीक्षण एवं समायोजन क्षमता परीक्षण का उपयोग किया गया। प्राप्त आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण कर पाया गया कि मूक-बधिर बालक-बलिकाओं के मध्य शैक्षिक उपलब्धि एवं समायोजन क्षमता में सार्थक अन्तर नहीं है।

विकलांगता कलंक नहीं हैं अपितु समाज कलंक है। जो समर्थ होते हुए भी विकलांग बालकों को शिक्षा नहीं देते। शिक्षा को इस ढ़ंग से दिया जाये और ऐसी मात्रा में दिया जाये, जिससे विकलांग बालकों में शिक्षा के प्रति विश्वास और अपने जीवन में आस्था दिखाई देने लगें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया है कि विकलांगों को शिक्षा देने का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे समाज के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चले सकें, उनकी सामान्य तरीके से प्रगति हो और वे पूरे भरोसे से व हिम्मत के साथ जियें। हमें इस बात पर भी जोर देना चाहिए कि समान्य बच्चों की तरह विकलांग बच्चों में भी असीम प्रतिमा छिपी हुई होती है। इन बच्चों को दया नहीं, अपितु सहयोग की आवश्यकता है। शिक्षक अभिभावक एवं समाज आदि सभी का उत्तरदायित्व है कि उनमें हीन भावना को पनपने न दें और उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न करनें में सहायता करें। जिससे ये बालक उचित ढ़ंग से समायोजित हो सकें। इसके लिए विकार एवं रूचियों की शीघ्र पहचान कर शैक्षिक कार्यक्रम प्रारंभ करना आवश्यक हैं। उपचारात्मक, निदानात्मक, शिक्षण मूल्यांकन में अनुकूलन आदि के द्वारा इन बालकों को अन्य बालकों के समकक्ष लाया जा सकता हैं। विकलांगता एक ऐसी स्थिति है जो कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी अवस्था में उनके सामान्य व्यवहार, कार्यशक्ति, विचार एवं नियमित दैनिक कार्य को प्रभावित करता है। आज विकलांगता शिक्षा दर्शन में मौलिक परिवर्तन आ चुका है। विकलांग शिक्षा को लेकर उभरने वाले प्रश्न चिन्ह सामाजिक दया के क्षेत्र से नहीं अपितु व्यक्ति में स्वावलम्बन या स्वाश्रियता के पक्ष को लेकर उठे है, जहाँ व्यक्ति गर्व से अपने को समाज का अंग कह सकें।

विश्व स्तर पर होने वाले शिक्षा सम्मेलनों से एक बात प्रकट हुई है बढ़ती जनसंख्या परिवर्तित होते जीवन मूल्यों का एक मात्र आधार ही आत्मनिर्भरता है। व्यक्ति, राष्ट्र या समाज चाहे वे किसी भी अवस्था में हो दूसरों पर निर्भर रहकर जीवित नहीं कर सकते।

प्रजातंत्र के जीवन दर्शन में विकलांग बालकों को शिक्षित करने का दायित्व अधिक उभर रहा है। शिक्षा स्वयं जीने की रहन-सहन की और विकास की एक पद्धति है जो विकलांग बालक में निहित अप्रगट शक्तियों को प्रगट कर जीवनोपयोगी बनाकर समाजोन्मुखी बनायेंगी ऐसी आशा है।

इसी उद्देश्य को लेकर मूक-बधिर की शिक्षा एवं उनके प्रशिक्षण का भार केन्द्रिय समाज कल्याण को सौंपा गया

***सहायक प्राध्यापक, जबलपुर पब्लिक कालेज, करमेता, जबलपुर**

जिसने हैदराबाद में राष्ट्रीय बधिर केन्द्र की स्थापना की गयी। राज्य विकलांग वर्ग के बालकों को शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों की पद्वोन्नति पर विशेष ध्यान देना होगा।

पूर्वशोध :-

कुमार, एस. (2002) विकलांग एवं सामान्य विद्यार्थी की अभिरुचि एवं समायोजन क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन किया एवं निष्कर्ष में पाया गया कि विकलांग एवं सामान्य विद्यार्थी की समायोजन क्षमता एवं अभिरुचि में सार्थक अंतर नहीं होता।

राम (2007) प्राथमिक विधालय में सामान्य मूक-बधिर बच्चों के शैक्षिक अपव्यय संबंधित समस्याओं के तुलनात्मक अध्ययन में निष्कर्ष पाया कि सामान्य एवं मूक-बधिर बालक एवं बालिकाओं के मध्य शैक्षिक अपव्यय दर में सार्थक अंतर पाया है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया जा रहा है कि मूक-बधिर छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं समायोजन क्षमता में सार्थक अंतर नहीं हैं।

उद्देश्य :-

1. मूक-बधिर बालक एवं बालिकाओं के मध्य शैक्षिक उपलब्धि स्तर का अध्ययन करना।
2. मूक-बधिर बालक एवं बालिकाओं के मध्य समायोजन क्षमता स्तर का अध्ययन करना।

परिकल्पना :-

1. मूक-बधिर बालक एवं बालिकाओं के मध्य शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।
2. मूक-बधिर बालक एवं बालिकाओं के मध्य समायोजन क्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

न्यादर्श :

प्रस्तुत शोध पत्र में न्यादर्श के चयन हेतु संभाव्य न्यादर्श विधि का प्रयोग किया गया है। न्यादर्श हेतु मूक-बधिर विद्यालयों से 45 बालक व 39 बालिकाओं का चयन किया गया।

मूक-बधिर बालकों की संख्या = 45

मूक-बधिर बालिकाओं की संख्या = 39

उपकरण :- समायोजन स्तर को मापने हेतु स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है।

1. स्वनिर्मित सामाजिक समायोजन क्षमता मापनी
2. स्वनिर्मित शैक्षणिक उपलब्धि परीक्षण मापनी

शोध विधि : सर्वेक्षण विधि

आंकड़ों का विश्लेषण -

1. मूक-बधिर बालक -बालिकाओं के मध्य शैक्षिक उपलब्धि का स्तर

सारणी क्र.1

क्र.	प्रदत्त	प्रदत्तों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मूल्य
1.	मूक-बधिर बालक	45	57.58	5.950	0.691
2.	मूक-बधिर बालिका	39	55.20	5.916	

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि मूक-बधिर बालकों के शैक्षिक उपलब्धि का मानक विचलन 5.95 तथा बालिकाओं का मानक विचलन 5.916 प्राप्त हुआ तथा बालक एवं बालिकाओं की अंतर मानक त्रुटि 3.44 प्राप्त हुआ। जो कि 82 स्वतंत्रता का अंश पर 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.99 है, जबकि प्राप्त टी मूल्य का मान t = 0.691 हैं। इस प्रकार प्राप्त टी मूल्य का मान सारणी मूल्य के मान से कम है। अत: इन दोनों के मध्य सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

यह परिणाम इस तथ्य की पुष्टि करता है कि मूक-बधिर बालक एवं बालिकाओं के मध्य शैक्षिक उपलब्धि स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया है। अत: परिकल्पना 1 की पुष्टि होती है।

सारणी क्र.2

मूक बधिर बालक एवं बालिकाओं के मध्य समायोजन क्षमता

क्र.	प्रदत्त	प्रदत्तों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मूल्य
1.	मूक-बधिर बालक	45	31.98	2.56	1.86
2.	मूक-बधिर बालिका	39	30.88	2.79	

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि मूक-बधिर बालकों के समायोजन क्षमता में मध्यमान 31.98 तथा बालिकाओं के मध्यमान 30.88 प्राप्त हुआ जो कि 82 df पर 0.05 स्तर पर 1.99 तथा 0.01 पर 2.64 है, जबकि प्राप्त टी मूल्य का मान t = 1.86 है। अत: इन दोनों के मध्य सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

मूक-बालक एवं बालिकाओं के मध्य समायोजन क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। अत: परिकल्पना क्र. 2 की पुष्टि होती है।

परिणाम की व्याख्या :-

उपर्युक्त सारणी क्रमांक 1 व सारणी क्रमांक 2 से स्पष्ट है कि मूक-बधिर बालक एवं बालिकाओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर एवं समायोजन समता स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है। क्योंकि बालक एवं बालिकाओं को विद्यालयों में एक समान सुविधाएँ दी जाती है। उनकी अभिरूचि सामान्य मानसिक योग्यता के अनुरूप शैक्षिक कार्य किया जाता है। उनकी समायोजन क्षमता को समझ कर ही उनकी कौशलताओं को विकसित करने का कार्य किया जाता है।

निष्कर्ष :-

प्राप्त आँकड़ों के विशलेषण से पाया गया कि मूक बधिर बालक एवं बालिकाओं की शैक्षिक उपलिब्ध एवं समायोजन क्षमता में अधिक अन्तर नहीं है। अभिभावकों एवं शिक्षकों को बच्चो के प्रति सचेत रहना चाहिए। शैक्षिक क्षेत्र के प्रति प्रोत्साहित करते रहना चाहिए एवं उन्हें रूचि के अनुसार ही अध्ययन क्षेत्र का चयन करने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए तभी वह उचित ढंग से समायोजित हो सकेगें।

संदर्भ ग्रंथ :-

(1) आंनद (2007) 'श्रवण विकलांग विद्यार्थियों की समस्याओं को अध्ययन' सुविधा प्रकाशन अक्टूबर।

(2) कपिल, के.एच. (2005) 'अनुसंधान विधियां' आगरा: हरप्रसाद भार्गव,

(3) जायसवाल, सीताराम (1994) 'समायोजन मनोविज्ञान' उत्तर प्रदेश ग्रंथ अकादमी लखनऊ

(4) भटनागर ए.बी. (2006) 'विकलांग बालकों' की समस्या शिक्षा का अध्यन, शिक्षा मनोविज्ञान मेरठ

.....

IMPACT OF SOCIO-ECONOMIC STATUS ON VOCATIONAL ASPIRATION OF PHYSICALLY HANDICAPPED STUDENTS

Dr. Nivedita Paul*
Dr. Shweta Pandey**

ABSTRACT

The objective of the present study was to compare the vocational aspiration of physically handicapped student. 89 physically handicapped students (67 boys and 22 girls) were selected for the study. Occupational aspiration sale test by Dr. J.S. Grewal was used. The data was analyzed using 't' test. The result show that there is an impact of socio economic status on vocational aspiration of physically handicapped students.

Keyword : *Vocational Aspiration, Physical Handicapped, Socio-Economic Status*

Inclusion of physically disables has been structured going on since ages in India. Ambulant physically disabled children have been included in to normal school but without any specific planning or technical skill. Lack of awareness of the problem faced by the disabled is the myths and misbelieve relating to disabilities have challenged the smooth schooling of disabled children. The public opinion on the education for disabled has changed due to "The person with disabilities act (1995) which says that no disabled child can be denied of education. This has strengthened the concept of already existing inclusive education.

Physically handicapped children are one of the categories or exceptional children and essential members of society like other. There are not many differences between these children and the normal ones in there psychological make up.

They have their own exceptionalities and influences in society. Previously they were looked upon with sympathy or pity but with the awakening of social awareness the general attitude towards the handicapped has undergone change they are not considered now to be equal to normal people.

The nation sample survey organization (NSSO-1991) revealed that 1.9 % of the country's total populations were affected with physical and sensory disabled and surveys conducted by various research organizations indicate that about 3 % are mentally disabled. Disabled people in India have been subject to direct and indirect discrimination for centuries there is a little doubt that it is neither discrimination nor disability that disable people. They deserve a comprehensive legislation to take the discrimination against them.

Lots of study have been done to study the different need of the disabled like as:- Kowalstis-Ellen, M: Rizzo-Terry.L (1996) conducted research on factors influencing preservice student attitude towards individuals with disabilities. Pettzer-Korl (2002), conducted research on attitudes handicaps in South Africa and Indian university students.

***Professor, Jabalpur Public College, Karmeta, Jabalpur.**
****Principal, Jabalpur Public Colleger, Jabalpur**

In the above mentioned research more emphasis is given on the other variable of disabled. The purpose for conduction the study was to describe the role of education in both positive and negative aspects of being disabled.

Objectives :

1. To study the vocational aspiration of physically handicapped boys in relation to their socio economic status.
2. To study the vocational aspiration of physically handicapped girls in relation to their socio economic status.
3. To study the vocational aspiration of physically handicapped girls and boys in relation to their socio economic status.

Hypothesis :

1. There is no impact of socio economic status on vocational aspiration of physically handicapped boys.
2. There is no impact of socio economic status on vocational aspiration of physically handicapped girls.
3. There is no impact of socio economic status on vocational aspiration of physically handicapped boys and girls.

Sample :

Institutes of physically handicapped children of Jabalpur have been included and chosen through random sampling process

S.No.	Name of Institution	No. of Boys	No. of Girls	Total	Types of Handicapped
1	Vocational Rehabilitation Center Jabalpur	4	3	7	Deaf and Dumb, Blind and orthopedic
2	Shaskiya Mook Badhir Vidyalaya	5	2	7	Deaf and Dumb
3	Vikas Asha Kendra	7	2	9	Deaf and Dumb and Polio
4	Kalaniketan Polytechnic College	8	5	13	Deaf and Dumb, Orthopedic
5	Other Sources	8	2	10	Deaf and Dumb, Orthopedic, polio.
	Total	**32**	**14**	**46**	

Research Method :

Survey method was adopted for the present study

Tools :

An occupational aspiration scale by Dr. J.S. Grewal

Analysis :

Data was collected by administering the scale on the sample and by statistical analysis of data conclusions were draw. The analysis and discussion of result is presented in table below

Table No. 1

Comparative result of vocational aspiration of physically handicapped boys in relation to socio economic status

Group	N	Mean	SD	t - Value
High SES	10	55.70	6.47	2.46
Low SES	22	43.73	9.21	

From the result it is clear that there is statistically significant difference in the vocational aspiration of physically handicapped boys at different level of socio-economic status. The obtained value of t test is 2.46 respectively which is more (2.04) than the minimum table value for significance at 0.05

Table no. 2

Comparative result of vocational aspiration of physically handicapped girls in relation to socio economic status

Group	N	Mean	SD	t - Value
High SES	4	49.00	9.35	1.63
Low SES	10	40.20	8.47	

From the result it is clear that there is statistically significant difference in the vocational aspiration of physically handicapped girls at different level of socio-economic status. The obtained value of t test is 1.63 respectively which is less (2.20) than the minimum table value for significance at 0.05

Table no. 3

Comparative result of vocational aspiration of physically handicapped boys and girls in relation to socio economic status

Group	N	Mean	SD	t - Value
High SES	14	50.21	7.45	2.56
Low SES	32	42.63	9.13	

From the result it is clear that there is statistically significant difference in the vocational aspiration of physically handicapped boys and girls of different socio-economic status. The obtained value of t test is 2.56 respectively which is more (2.02) than the minimum table value for significance at 0.05 level.

Thus from the above result it is clear that there is impact of socio-economic status on boys for vocational aspiration whereas girls does not have any impact of socio-economic status on vocational aspiration. It means that higher socio-economic status group may have good facilities and high vocational aspiration of their parents and it may also affect their aspiration in comparison to the low socio economic status group of physically handicapped children.

Sinha, S. (2008) also found in her research that the higher status socio economic student academic achievement is more higher in comparison to lower status socio economic student but it does not mean that the lower status socio economic student don't have potential but the main reason behind this is less of facilities . This research also indicates that higher socio economic status handicapped students are more inspired then lower socio economic status handicapped student.

On the basis of above result the hypothesis are rejected

Conclusion :-

The following conclusion may be drawn

1. There is impact of socio-economic status on vocational aspiration of physically handicapped boys.
2. There is no impact of socio-economic status on vocational aspiration of physically handicapped girls.
3. There is impact of socio-economic status on vocational aspiration of physically handicapped boys and girls.

REFERENCES :-

1. Cathoun, J and Acocella: Abnormal psychology and modern life, D.S. toraporevala Sons. Pg 106-641
2. Bhargava, M. Introduction to exceptional children pg. 12-14
3. Chitamani Kar : Exception Children Pg. 79-83
4. Sharma, R.A. : Fundamentals of special education Pg 212-216
5. Mathur, S.S. (1992) Educational Phycology, Vinod Pustak Mandir. Agra, 12th Ed., Pg 560

EFFECTIVENESS OF MULTIMEDIA APPROACH ON ACHIEVEMENT IN SCIENCE AT UPPER PRIMARY LEVEL

Smt. Alka Sharma*

ABSTRACT

The world in which we live is changing very fast so the field of education also experiencing changes. Every branch of learning is oriented in such a way to produce individuals who would fit in the present world scenario. The scientific and technological temper is giving an investigate nature to all of us.

The present study is an experimental one and conducted in government schools of Narsinghpur district of Madhyapradesh. The investigator has taken 80 students (40 boys from Govt. Nehru middle school and 40 girls from Govt. M.L.B. school Narsinghpur) by using simple random sampling technique. For conducting experiment the investigator has used two group randomized control and experimental group. For collection of data the investigator has used an achievement test of science constructed by herself and t-test has also used for analysis and interpretation of data. The result of the study reveals that Multimedia Approach is better than traditional method.

Introduction :

The trend in education at present does not demand the textbook learning alone. It aims at giving complete preparation to the pupils and hence, it is more important to see how the instructions are conveyed rather than what is conveyed. At this point, the usefulness of material and media are decided by the ways and means by which it is presented. Since Science is a rapidly growing subject its teaching demands continued re-assessment and periodical review of the contents and methods of teaching. The facts, concepts, ideas, principles, and process of Science greatly contribute to the young minds. In the traditional teaching learning relationship, the relation between the teacher and the student is formal, where students are merely passive learners. Due to which the students lose interest towards learning Science. But slowly over the last decade more innovative approaches appear and teachers noticed that children are becoming more motivated and interested with the different teaching methods, Discovery learning, slides, computer- aided instruction, multimedia, internet, these all are the parts of innovative approach or modern methods of teaching. One of the most important methods among modern methods of teaching is multimedia approach.

Concept of Multimedia :

Multimedia is nothing but processing and presentation of information in a more structured and understandable manner using more than one media such as text, graphics, animation, audio and video delivered by computer. The computer is an intrinsic part of multimedia. All these elements, text, graph-

***Sn. Lect. D.I.E.T. Narsinghpur, (M.P)**

ics, sound and video, are either computer generated or transmitted through computer. Multimedia can be loosely defined as computer-based technology integrating some, but not necessarily all, of the following: text, graphics, animation, sound and video.

Significance of Multimedia in Education :

Multimedia learning environments have a direct effect on learning and even on growing as a person. An effect that differs and can't be achieved as easy whilst using traditional education materials. a benefit of multimedia learning is that it takes advantage of the brain's ability to make connections between verbal and visual representations of content, leading to a deeper understanding, which in turn supports the transfer of learning to other situations. All of this is important in today's 21st century classrooms, as we are preparing students for a future where higher-level thinking, problem solving and collaborative skills will be required. Integrating multimedia into teaching-learning transaction has been found to transform the teacher's role from being the traditional 'Sage on the Stage' to also being a 'Guide on the side, ' and students' roles also change from being passive receivers of content to being more active participants and partners in the learning process.

A brief review of the work :

Kannan, M.(2007) conducted a study 'A Study of Effectiveness of Use of Computer Technology in Teaching the Concepts of Physics at Senior Secondary Level.' The computer assisted teaching is the best method to teach the concepts of physics at senior secondary level. There is so much profitable learning by the students just by using computer technology to learn the concepts of physics without the aid of the teacher or by the traditional method of teaching physics.

Vansia, Falguni S. (2011) conducted a study 'Development and Effectiveness of Computer Based Learning Programme in Teaching Mathematics.'and reveal that CBL method effectiveness was found comparatively better in terms of achievement scores of students.

Menon, A.(2013). conducted a study 'Effectiveness of Smart classroom teaching on the Achievement in Chemistry of Secondary school students.' The results revealed that students achieved higher when taught in smart classes as compared to traditional mode of instruction.

Satyaprakash, C.V., & Sundhanshu, Y.(2014). conducted a study 'Effect of Multi Media teaching on achievement in Biology.' The findings reveal that Multi Media Teaching significantly promoted achievement with respect to knowledge, understanding, application and total achievement in biology in comparison to traditional method and different objectives like knowledge, understating, application and total achievement in biology were significantly attained by both boys and girls in experimental group.

Need and Importance of the study:

A live multimedia approach may allow interaction with the presenter. It helps in advancing students involvement. Thus this approach is a combination of a verity of instructional material and techniques providing series of learning experiences related to science and scientific ideas. It can helpful for the teacher to meet the needs of the learners. The teacher is ultimately responsible for deciding their own class room objectives and for the attainment of these learning outcomes. To bring about

desired learning out comes teacher has to plan, select material and method and guide the class. There is a need to expose teachers to various strategies which will result in better teaching learning process. For success, teachers have to be provided with a material which is different and more effective than what is traditionally presented in text books.

Hence the present study is going to be conducted with the main purpose of integrating research on the effectiveness of multimedia approach for teaching scientific concepts of young minds.

"Effectiveness of Multimedia Approach on Achievement in Science at Upper Primary level."

Objectives of the Study :

1. To compare the Achievement of boys in science taught through traditional method and Multimedia Approach.
2. To compare the Achievement of girls in science taught through traditional method and Multimedia Approach.
3. To compare the Achievement of pupils in science taught through traditional method and Multimedia Approach.

Hypotheses :

1. There is no significant difference between the Achievement of boys in science taught through traditional method and Multimedia Approach.
2. There is no significant difference between the Achievement of girls in science taught through traditional method and Multimedia Approach.
3. There is no significant difference between the Achievement of pupils in science taught through traditional method and Multimedia Approach.

Method and design of the study:

The present study is experimental in nature. Two groups were made randomly to determine the effect of Multimedia Approach on academic achievement of the students. Traditional Approach was used for the control group and Multimedia approach was used for the experimental group.

Variables related to the study:

Independent Variable: Teaching Approach

1. Traditional Approach
2. Multimedia Approach

Dependent Variable :

1. Achievement scores in Science.

Controlled Variable :

1. Upper Primary Level.

Sample :

Group	Number of students		Total
	Boys	Girls	
Experimental group	20	20	40
Control group	20	20	40
Total	40	40	80

Tools -

Self made achievement test was used for collection of data.

Statistical Technique :

t-test was used for the analysis of the data.

Analysis and interpretation of data:

Table-1

(Mean, Standard Deviation and t-values of Gain Scores of Experimental and Control Group in Achievement in Science.)

Teaching Method	Gender	N	M	SD	df	t - ratio
Traditional	Boys	20	24.4	6.4	38	2.5
Multimedia	Boys	20	29.0	4.6		
Traditional	Girls	20	28.7	5.2	38	2.7
Multimedia	Girls	20	33.7	6.1		
Traditional	Pupils	40	26.55	7.28	78	3.22
Multimedia	Pupils	40	31.32	5.89		

From the result presented in above table it is clear that:-

- The mean achievement score of boys of traditional class is 24.4 where as the mean achievement score of boys of multimedia class is 29.0. The difference between the mean of two groups is 4.6.This is statistically significant, since the obtained value of t -ratio is 2.5, which is more than the value 2.02, the minimum value for significance at 0.05 level of confidence.
- The mean achievement score of girls of traditional class is 28.7 where as the mean achievement score of boys of multimedia class is 33.7 The difference between the mean of two groups is 5.0.This is statistically significant, the obtained value of t -ratio is 2.7, which is more than the

value 2.02, the minimum value for significance at 0.05 level of confidence.

➢ The mean achievement score of pupils of traditional class and smart class is 26.55 and 31.32 respectively. The difference between the mean of two groups is 4.77, which is also significant, since the obtained value of C.R. is 3.22 which is more than the value 264, the minimum value for significance at 0.01 level of confidence.

RESULT AND CONCLUSION :

On the basis of the above interpretation it can be concluded that there is a significant difference in the achievement score of boys, girls and pupils taught through traditional method and multimedia approach. The achievement score of boys, girls and pupils taught through multimedia approach are better than the achievement score of boys, girls and pupils taught through traditional method.

From the review Researches of Kannam, Vensia, Menon and Satyaprakash it is noted that multimedia has positive effects on learning outcomes in comparison to traditional method. It supports and improves learning. Most of researches concluded that the use of multimedia leads to more positive for student achievement than the use of traditional method. The results of this study also revealed that students achieved higher when taught through multimedia approach as compared to traditional method. Reviews of studies also supported the results of this study.

REFERENCES :-

- Ahmad, R. N.(2011). 'Attitude towards Biology and Its Effects on Student's Achievement. International Journal of Biology Vol. 3, No. 4; October 2011 ISSN 1916-9671.
- Benjamin, A. E. W. (2007). 'Development of Interactive Multimedia CD-based Learning Courseware for Learning Physics at Higher Secondary Level.' Indian Educational Abstracts, Volume 8, Number 2, July 2008, ISSN: 0972-5652.
- Bent B. A., & Katja V.D.(2013). Multimedia in Education Curriculum ISBN 978-5-7777-0556-3.
- Best, J.W.(2010).Research in Education, . ISBN 10: 0205349978.
- Joshi, A. (2012). ' Multimedia Approach to Teaching-Learning Process.' Current World Environment Vol. 7(1), 33-36 (2012)
- Kapil, H.K.(2014).Elements of Statistics in Social Sciences ISBN-978-81-89994-19-8.
- Khan, I.M.(2015). 'Impact of Multimedia-aided Teaching on Students' Academic Achievement and Attitude at Elementary Level.' US-China Education Review A, May 2015, Vol. 5, No. 5, 349-360, ISSN: 1548-6613.

****

विद्यार्थियों के सन्दर्भ में विपश्यना ध्यान की वर्तमान स्थिति (एक अवलोकन)

*डॉ. प्रिया सोनीखरे**
*दिव्या मिश्रा***

शोध सार

आज के युवा वर्ग के लिए जितना पर्याप्त होना चाहिए उससे अधिक की लालसा पनप रही है जिस कारण वह अपने जीवन का उत्साहवर्धन नहीं कर पा रहा है, एवं चिन्ता, अशांति, अनिद्रा आदि समस्याओं से त्रस्त/ग्रसित रहता है, जिनका निवारण वह अपने आस-पास के बाह्य वातावरण में ढूंढने की कोशिश करता है, परन्तु जिन खुशियों को वह अपने भौतिक परिप्रेक्ष्य में खोजने की कोशिश करता है, वे बाहर न होकर उसके अपने भीतर होती हैं। जिन्हें जानने एवं समझने का वह प्रयत्न भी नहीं करता जिससे उसे अपनी आन्तरिक शक्तियों का ज्ञान नहीं हो पाता और नैराश्य से युक्त जीवन जीता है। मन को स्वस्थ्य रखने का एक-मात्र इलाज ध्यान है जिसके द्वारा व्यक्ति में सकारात्मक विचार जन्म लेते हैं, मानसिक शान्ति का अनुभव होता है तथा मस्तिष्क सुचारू रूप से कार्य करता है, बेहतरीन जीवनशैली होती है। ध्यान को भी विभिन्न महापुरूषों ने अपनी-अपनी विधियों से बताया हैं, जिनमें से गौतम बुद्ध का विपश्यना ध्यान वैज्ञानिक विधि पर आधारित है, जो किसी विषय, वस्तु अथवा व्यक्ति की वास्तविकता को जानने और बिना प्रतिक्रिया के उसे स्वीकारने में अधिक बल देता है।

आज के इस आधुनिक जगत में प्रत्येक मानव संघर्षमय जीवन व्यतीत कर रहा है। प्रत्येक मानव की जिन्दगी में सफलता-विफलता, खोना-पाना, सुख-दुःख के दौर आते-जाते रहते हैं। कई लोग तो इसका डटकर सामना करते हैं तो कई घबराकर हार मान लेते हैं, जिसके फलस्वरूप वे अधिक से अधिक शारीरिक एवं मानसिक तनाव से ग्रसित रहते हैं। जैसा कि परीक्षा के समय देखा जा सकता है कि किस प्रकार से विद्यार्थी तनाव से जूझते हैं और उनके दिमाग में तरह-तरह के नकारात्मक विचार आते हैं।

भावनात्मक रूप से कमजोर व्यक्ति, विद्यार्थियों में आत्महत्या जैसे विचार भी देखे जा सकते है। अनेक लोग छोटी सी बीमारी में भी हार मान लेते हैं तो बहुत लोग इन मुश्किल परिस्थितियों में भी अपना नियन्त्रण नहीं खोते। ऐसा क्यों होता है कि एक ही परिस्थिति में दो लोग अलग-अलग प्रकार से प्रतिक्रिया करते हैं? विज्ञान के अनुसार ऐसा इन्सान की प्रतिरक्षा प्रक्रिया के कारण होता है। भावनात्मक रूप से कमजोर व्यक्तियों की प्रतिरक्षा प्रक्रिया कमजोर होती है, जिसके कारण ऐसे व्यक्ति तनाव, बीमारी एवं विपरीत परिस्थितियों में जल्द ही घबरा जाते हैं। ऐसे लोगों के लिए सबसे बड़ा इलाज अति प्राचीन पद्धति मेडिटेशन है। ध्यान वह क्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने मन को प्रशिक्षित करता है अथवा मन को चेतन की एक विशेष अवस्था में लाने का प्रयास करता है। आज की भागदौड़ भरी जिन्दगी में हम सभी खुशियों के पीछे भाग रहे है। एक विद्यार्थी अच्छे नम्बरों से पास होने के लिए चिंतित रहता है, वह पास हो जाता है, पर प्रसन्न नहीं होता है, सोचता है जब नौकरी लग जाएगी तो खुशियाँ मिलेंगी, नौकरी भी मिल जाती है फिर भी वह आगे सोचता है, प्रमोशन होने पर खुशियाँ मिलेगी पर उसे और आगे की चिन्ता होती है। वह सदैव भविष्य की खुशियाँ पाने में लगा रहता है और वर्तमान की खुशियों को व्यर्थ जाने

***असिस्टेंट प्रोफेसर शिक्षा विभाग वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान**
****रिसर्च स्कॉलर शिक्षा विभाग वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान**

देता है। मानव शरीर के अन्दर विराजमान आत्मा, उस परमात्मा का ही एक अंश है, तो जब परमात्मा सर्वज्ञ है, सर्वव्यापी है, सर्वशक्तिशाली है, तो हम क्यों नहीं। शक्तियों को ध्यान में जाकर ही जाना जा सकता है। विभिन्न धर्मों के अनुयायियों ने ध्यान क्रिया को प्रचारित व प्रसारित किया है, जिनमें से एक विपश्यना ध्यान भी है। विपश्यना भारत की एक अत्यन्त पुरातन साधनाओं में से एक ध्यान प्रणाली है जिसका अर्थ – जो जैसा है, उसे ठीक वैसा ही देखना–समझना है। लगभग 2500 वर्ष पूर्व भारत में भगवान गौतम बुद्ध ने विलुप्त हुई इस पद्धति का पुनः अनुसंधान कर इसे सार्वजनिक रोग के सार्वजनिक इलाज अर्थात् जीवन जीने की कला के रूप में सर्वसुलभ बनाया।। इस सार्वजनिक साधना विधि का उद्देश्य विकारों का सम्पूर्ण निर्मूलन एवं परमविमुक्ति की अवस्था को प्राप्त करना है। इस साधना का उद्देश्य केवल शारीरिक रोगों को नहीं बल्कि मानव–मात्र के सभी दुःखों को दूर करना है।

विपश्यना, आत्म–निरीक्षण द्वारा आत्मशुद्धि की साधना है। अपने ही शरीर और चित्तधारा पर पलपल होने वाली परिवर्तनशील घटनाओं को तटस्थ भाव से निरीक्षण करते हुए चित्तविशोधन का अभ्यास मनुष्य को सुख, शान्ति का जीवन–जीने में मदद करता है, तथा अपने भीतर शान्ति और सामंजस्य का अनुभव करने में सहायक है।

आज आवश्यकता है इंसान की जो कि डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, संगीतकार, क्रिकेटर आदि सभी व्यावसाय में सर्वप्रथम है। लोग अपनी प्रगति के कारण चाँद–सितारों की दुनिया तक तो पहुँच गए, किन्तु अपनी धरती पर इंसानों की दुनिया को, जो इंसानियत, जीवन आदर्श व मूल्यों पर आधारित है, को भूलते जा रहे हैं। देश सामाजिक कुरीतियों, सांस्कृतिक धरोहर के प्रति नफरत, प्रांतीयता, साम्प्रदायिकता, जातिवाद आदि संकीर्ण भावनाओं के चंगुल में बुरी तरह फंसा हुआ है। समुदाय के लोगों के मध्य परस्पर प्रतिस्पर्धा एवं स्वार्थ दिखाई देने लगा है। सामाजिक – आर्थिक असमानता ने देश की 21 वीं सदी की सुखद भविष्य की आशाओं पर पानी फेर दिया है। संवेग तर्क पर हावी है। कृतघ्न वर्तमान राक्षसी प्रवृत्ति सम्पूर्ण समाज के मूल्यों को दूषित व नष्ट करने में गौरान्वित महसूस कर रही है। दिनों–दिन टूट रहे वर्तमान समाज में भौतिक सम्पदा तो लगातार बढ़ रही है लेकिन आदर्श मानवों की कमीं होती जा रही है। वर्तमान समाज में भौतिक परिवर्तन इतने तीव्र गति से हो रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप मान, मर्यादा संस्कृति व मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। बालक की बाल्यावस्था से ही सर्वांगीण विकास के समस्त पहलुओं यथा सामाजिक, बौद्धिक, मानसिक मूल्यों के विकास की भावना होती है। जो मूल्यों के प्रति विश्वास उत्पन्न करती है। यह विश्वास आगे चलकर समाज के साथ समन्वय स्थापित करने में मदद करता है। महान् दार्शनिक प्लेटो नें कहा है– ''शिक्षा में उस बात को कोई स्थान नहीं दिया जाना चाहिए जो गुणों को प्रेरित ना करे। मूल्यों की शिक्षा का पाठ्यक्रम भिन्न ना होकर अन्य विद्यालयी गतिविधियों विषयों के साथ सम्मिलित होना चाहिए।'' आज के बालक से ही कल का राष्ट्र व राज्य निर्मित होगा। मूल्यपरक शिक्षा विद्यार्थियों को सामाजिक परिवर्तन के विविध रूपों व उनके निहितार्थ को समझने में सक्षम बनाती है। मूल्यों का बीज परिवार में पड़ता है और विद्यालय इन्हें पल्लवित करते है, लेकिन अधिकांश विद्यालयों के अधिकतर शिक्षक सुनियोजित मूल्य शिक्षा देने का प्रयास नहीं करते है। कुछ शिक्षक समाज के मूल्यों के ह्रास की आड़ में मूल्य शिक्षा की प्रभावोत्पादकता को संदेह की नजरों से देखते हैं तो अन्य कुछ शिक्षक विषय–वस्तु को रटने पर बल देतें हैं। कुछ मूल्य शिक्षण को नाजुक मामला मानते हैं तथा अपनी व्यावसायिक तैयारी को मूल्य की शिक्षा देने के लिए उपयोगी नहीं पाते हैं। कुछ शिक्षक ऐसे भी होते है जिनकी उन मूल्यों में आस्था नहीं होती है, जिन्हें वे पढ़ाना चाहते है। यदि छात्रों को आदर्श इंसान बनाना है तो शिक्षक को स्वयं के चरित्र एवं व्यवहार को मूल्य से युक्त रखते हुए आदर्श प्रस्तुत करना होगा। यदि स्वयं शिक्षक में अच्छे मूल्य विकसित होंगे तो छात्र शिक्षक को अपना आदर्श बना सकते हैं, इसलिए शिक्षक जिन मूल्यों को छात्रों को प्रदान करना चाहते हैं वे स्वयं उसमें भी व्यक्त होने चाहिए।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने कहा है कि ''मुझे लगा है कि विद्यार्थी पुस्तकों तथा व्याख्यानों की अपेक्षा शिक्षकों के

जीवन से अधिक सीखतें हैं उस शिक्षक को धिक्कार है जो एक बात कहता है तथा जीवन में व्यवहार अन्य प्रकार से करता है। आचार्य तथा शिक्षकगण पुस्तकों के पृष्ठों से चरित्र नहीं सिखा सकते, चरित्र–निर्माण तो उनके जीवन से सीखा जाता है।''[1]

शिक्षा भी ऐसी ही होनी चाहिए, जो मनुष्य के व्यक्तित्व में दोनों भागों का विकास करे। शिक्षा में मूल्यों का अभाव होने के कारण विद्यार्थियों को अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है–

- प्रेरणादायक विचारों में कमीं
- धार्मिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान का अभाव
- सहयोग की कमीं
- अर्थ की प्रधानता
- अहं, क्रोध, घृणा, अहिंसा एवं नकारात्मक विचारों की अधिकता
- आधुनिकतावाद तथा पश्चिमीकरण का वर्चस्व
- सांस्कृतिक धरोहर के प्रति बदलता हुआ नजरिया
- भारतीय संस्कारों का लुप्त होना
- भारतीय भाषाओं के प्रति अनादर
- तनाव, चिंता की अधिकता
- बढ़ता हुआ कार्य–भार
- आत्मविश्वास में कमी
- जीवन शैली में नैतिकता का अभाव
- विद्यार्थियों की लालसाओं का बढ़ना
- संतोष, आत्मनियंत्रण जैसी शक्तियों में कमी
- पाठ्य–पुस्तकों का बाल मनोविज्ञान रहित होना
- इंसानियत के स्थान पर व्यावयसायिक होने पर बल देना

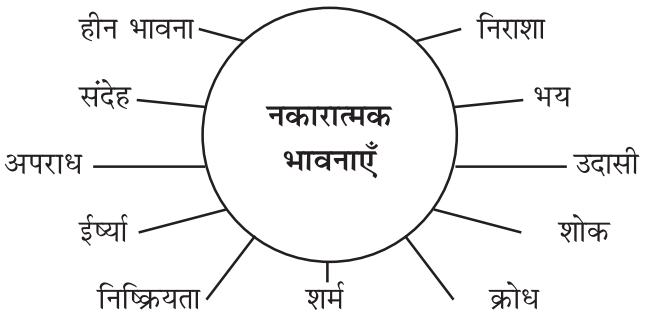

उपरोक्त समस्याओं के हेतु विपश्यना ध्यान अपनी विशेष भूमिका अदा करता है, जिसके द्वारा विद्यार्थी मानसिक शान्ति और सन्तुलन प्राप्त करता है।

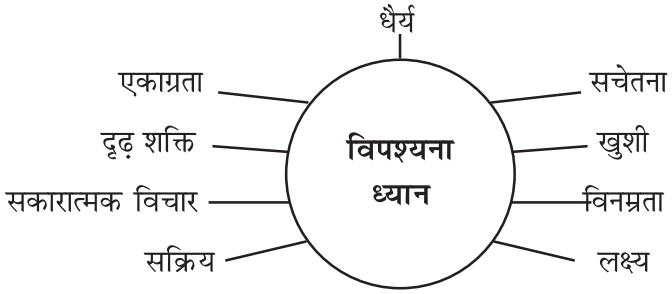

प्रक्रिया – विपश्यना ध्यान की प्रक्रिया इस प्रकार है–

विपश्यना की पृष्ठभूमि को जानना

↓

सामान्य रूपों को जानना

↓

सही का चयन करना

↓

अभ्यास की शुरूआत करना

↓

शरीर को व्यवस्थित करना

↓

आवश्यक समायोजन करने के लिए अपने शरीर के प्रति जागरूकता बढ़ाना

↓

अपने ध्यान के प्रति केन्द्रण करना

↓

अवलोकन एवं निरीक्षण को जारी रखना

↓

मस्तिष्क में आने वाली अतिरिक्त बातों के प्रति ध्यान न देना

↓

मानसिक रूप से स्वयं को ध्यान के प्रति एकाग्र करना

विपश्यना ध्यान विधि :

- विपश्यना बहुत ही सीधा एवं सरल प्रयोग है। इसमें आती-जाती सांसों पर ध्यान दिया जाता है।
- प्रथम अभ्यास में उठते-बैठते, सोते-जागते, बात करते या मौन रहते किसी भी स्थिति में केवल श्वास के आवागमन को नाक के छिद्रों में महसूस करते हैं।
- जैसे- श्वास के आवागमन को स्वाभाविक रूप से देखना अथवा महसूस करना कि ये श्वास छोड़ी और ये ली।
- श्वास छोड़ने एवं लेने के बीच के समय पर सहजता से ध्यान देना। जबरदस्ती अथवा किसी दबाव में आकर इस कार्य को नहीं करना है।
- सब कुछ बंद करके इस पर ध्यान देना ही विपश्यना ध्यान है।

भगवान बुद्ध के समय से निष्ठावान् आचार्यों की परम्परा ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस ध्यान विधि को अपने अक्षुण्ण रूप में बनाए रखा इस परम्परा के वर्तमान आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का जी हैं। वे भारतीय मूल के हैं, लेकिन उनका जन्म म्यांमार (बर्मा) में हुआ एवं उनके जीवन के पहले पैंतालीस वर्ष म्यांमार में ही बीते। वहाँ उन्होंने प्रख्यात् आचार्य सयाजी ऊ बा खिन, जो कि एक वरिष्ठ सरकारी अफसर थे, से विपश्यना सीखी। अपने आचार्य के चरणों में 14 वर्ष विपश्यना का अभ्यास करने के बाद सयाजी ऊ बा खिन ने उन्हें 1969 में लोगों को विपश्यना सिखलाने के लिए अधिकृत किया। उसी वर्ष वे भारत आए और उन्होंने विभिन्न सम्प्रदाय एवं विभिन्न जाति के हजारों लोगों को भारत में और भारत के बाहर पूर्वी एवं पश्चिमी देशों में विपश्यना का प्रशिक्षण दिया है। विपश्यना शिविरों की बढ़ती मांग को देखकर 1982 में श्री गोयन्का जी ने सहायक आचार्य नियुक्त करना शुरू किया। विपश्यना के विशेष अभ्यास के लिए दुनिया भर में केन्द्र स्थापित किए गए हैं, जिसकी सहायता से आज की बढ़ती जनसंख्या में लोगों को जीवन जीने की इस कला को सीखने का अवसर प्राप्त होता है, जो स्थायी शांति और खुशी लाता है।

अब यह समझा जा सकता है कि विपश्यना आधुनिक शिक्षा में महत्वपूर्ण अंतराल जैसे - दिमाग का प्रशिक्षण, संतुलित, उद्देश्यपूर्ण तथा सामंजस्यपूर्ण जीवन के लिए अग्रणी हो सकता है। विपश्यना ध्यान इस संवेदी दुनिया की सभी घटनाओं को स्पष्ट एवं बौद्धिक रूप से मर्मज्ञ दृष्टि के तहत निष्कासित रूप से देखने का मार्ग प्रदान करता है। मानसिक सामग्रियों का अवलोकन स्वयं-शिक्षा का एक शक्तिशाली उपकरण भी है, क्योंकि यह ध्यान-धारक को अपने आत्म-सम्मान को नुकसान किए बिना अपने कमजोर बिन्दुओं और मजबूत बिन्दुओं की एक बहुत स्पष्ट तस्वीर पता चलता है।

सम्पूर्ण स्वस्थ शारीरिक कार्य के लिए विपश्यना ध्यान अधिक महत्वपूर्ण है, विपश्यना ध्यान मन की शान्ति प्रदान करता है और शरीर पर नियन्त्रण करता है। इसके माध्यम से एड्रेनाइल स्तर को नियन्त्रित किया जा सकता है। साधारणत: छात्र जीवन तनावपूर्ण होता है। विद्यालय, ट्यूशन, गेम्स एवं अन्य गतिविधियों से निबटना अधिक तनावपूर्ण एवं थकाऊ रहता है जिसमें विपश्यना ध्यान द्वारा मानसिक शान्ति एवं एकाग्रता में सुधार हेाता है। ध्यान करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक दिन घण्टों तक ध्यान मुद्रा में लीन रहना होगा एक विद्यार्थी के लिए प्रतिदिन 10-15 मिनट तक प्रतिदिन 2 बार ध्यान क्रिया करनी आवश्यक है, जिससे विद्यार्थियों में स्वयं के भीतर छिपे हुए गुणों का पता चल पाएगा, एकाग्रता विकसित होगी, तनाव, चिन्ता, भय आदि से मुक्ति प्राप्त होगी। इसके साथ ही यदि नियमित रूप से विपश्यना ध्यान का अभ्यास किया जाए तो कुछ प्रगतिशील परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं जो सामान्य रूप से विद्यार्थियों के लिए लाभप्रद हो सकते हैं। कुछ सिद्ध अध्ययनों द्वारा पता चला है कि ध्यान में अनिवार्य रूप से मानव शरीर पर एक जैव रासायनिक प्रभाव होता है जो एंटीडिप्रैंसेंट

एवं विरोधी चिन्ता दवाओं के लाभों के समान होता है और इस प्रकार मानसिक तनाव को दूर करने में अधिक मदद मिल सकती है। विपश्यना ध्यान द्वारा विद्यार्थियों को संतुलित रक्तचाप, बेहतर पारस्परिक सम्बन्ध, विश्वास स्तर में बढ़ावा, गहरी नींद, सिर दर्द एवं अन्य विविध समस्याओं से राहत, सुधार, एवं तेज मस्तिष्क आदि लाभ प्राप्त होते हैं।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर यह सार निरूपित होता है कि वर्तमान समय में विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर अधिक होने के कारण उसकी जीवन–शैली में व्यस्तता आ जाती है, जिसके फलस्वरूप उसमें तनाव, कमजोरी, चिड़–चिड़ापन (चिड़–चिड़ाहट) आदि मानसिक बीमारियाँ अपना घर बना लेती हैं जिनसे वह सदैव जूझता रहता है एवं स्वयं के बारे में सोचने अथवा स्वयं को समझने / जानने का अवसर नहीं प्राप्त हो पाता जिससे व्यक्ति अपनी प्रतिभाओं को निखारने में असमर्थता हासिल करता है तथा उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असफलता हाथ लगती है। अपनी विपरीत परिस्थितियों से विवश होकर वह आत्महत्या जैसे कदम भी उठा लेता है। इन सभी नकारात्मक विचारों के पतन हेतु विपश्यना ध्यान अति महत्वपूर्ण क्रिया है। यह एक ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा मानव शरीर को एक नवीन ऊर्जा प्राप्त होती है तथा वह अपने कार्य को रचनात्मक रूप से प्रदर्शित करने के योग्य होता है साथ ही सबसे बड़ी एवं अहम् शक्ति 'मानसिक ऊर्जा' से परिचित होता है और मानसिक शान्ति को प्राप्त करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. Khurana Amulya, Dhar, P.L., 2002, Effect of Vipassana Meditation on quality of life, Subjective well-being And criminal propensity among inmates of tihar jail. Delhi, Vipasana Resarch Institute, Maharashtra, India
2. पचौरी गिरिश, (2008), ''उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक'', लायल बुक डिपो, मेरठ
3. मण्डल आर. के, (2013), ''उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक'', ग्रीन लीफ पब्लिकेशन, वाराणासी
4. सन्त वन्दना, ''बौद्धकाल में स्त्रियों की स्थिति: पुत्री के सन्दर्भ में ''सन्दर्भ में'', समझ बोध ऐसासिएशन ऑफ एकेउमिक पीपुल ऑफ सोसाइटी, लखनऊ, पृष्ठ संख्या–103–108
5. शर्मा रीटा, (2016), '' शिक्षा के सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार, '' साहित्यगार, जयपुर
6. https://www.livescience.com/28643-indian-culture.html
7. yurashaktibanaras.in/2015/02/07/vedic-education-gurukal-system-of-education/
8. www.speakingtree.in/blog/ancient-education-vs-present-education-217884
9. www.essayinhindi.com/education/vk/आधुनिक–शिक्षा–प्रणाली पर /4253
10. http://en.wikipedia.org/wiki/meditation
11. http://www.dhamma.org/hi/about/vipassana
12. http://www.vridhamma.org/holistic-education-and-vipassana
13. http://www.dharmma-org/en/about/goenka
14. http://target study.com/articales/importance-of-meditation-and-yoga-in-students-life-html

बाईबल की नारियां – आधुनिक युग के संदर्भ में

*डॉ. कैरोलिन अब्राहम **

शोध सार

प्राचीन काल से आधुनिक युग तक के नारी जीवन के बदलते स्वरूप को देखते हुये बाईबल के पुराने और नये नियम से सम्पूर्ण नारी जगत की भावनाओं, सोच और गुणों को इस शोध पत्र में अभिव्यक्त किया गया है। जिसमें नारियों के प्रति निष्ठा, विश्वास, कर्मक्षेत्र के दायित्व को विभिन्न उदाहरणों द्वारा दर्शाते हुये समाज और देश में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त कर, उनके सामर्थ्य और सम्मान को बनाये रखने का सतत् प्रयास किया जाना चाहिये।

वह सुन्दर सौहार्द्रपूर्ण परिवेश – बनाने के लिए स्वयं आदर्श है। मिट्टी के घरोदों को स्वर्ग बना देती है। एक ऐसे समाज की कल्पना की गई है जिससे अपने आसपास का वातावरण सुधर जाता है।

किसी भी व्यक्ति को महान बनाने वाली स्त्री होती है। परिवार की स्त्रियाँ अपने घर पर प्राचीन काल से ही प्रबंधन करती आई है, समय बदल गया तकनीकी का दौर आया पर नारी ने अपने फर्ज में बदलाव नहीं किया। महान पुरुष, दार्शनिक, चिंतक को जन्म दिया उनका पालन–पोषण और संस्कार किया। बाईबल में निहित विचारों को जब हम देखते है तो वर्तमान आधुनिक युग में भी दिन रात उसे श्रम करते हुये पाते हैं ये संसार भर की नारियों की कर्मठता, हौसलें और प्रबंधन का स्वरूप हम देख सकते है वर्णित है ''उसका दीपक रात को नहीं बुझता''– सुक्तिग्रंथ पुराना नियम।

वह दैनिक जीवन और भविष्य की योजनाओं को साकार करने के लिये भरसक प्रयास करती है अपने बालक – बालिकाओं के लिए वह चाहे स्वयं पढ़ी लिखी न हो, वह चाहती है कि वे उससे भी बड़े मुकाम हासिल करें। उसकी भूमिका बच्चों के जन्म से उनके नौकरी, व्यावसाय, विवाह तक रहती है दुखों में सच्चा साथी की सहभगिता सदैव अविस्मरणीय है।

''वह सामर्थ्य और मर्यादा से विभूषित है, हँस कर भविष्य की प्रतीक्षा करती है।''

जो उँगलिया हाथ पकड़ कर चलना सिखाती है वह अपने घर की अर्थव्यवस्था का भी ध्यान रखती है सुक्ति ग्रंथ में लिखा है–

''उसके हाथों में चरखा रहा करता है उसकी उँगलिया तकलिया चलाती है।''वह कमरकस कर काम करती है। इस प्रकार अपनी बांहों के मजबूत बनाये रखती है नारी के स्वविवेक निर्णय दूरदर्शिता का परिणाम दिखाई पड़ता है।''

प्राचीनकाल में ऋतुओं के आधार पर महिलायें अपने घर का प्रंबधन करती थी, यह सब आधुनिक काल में भी किया जाता है केवल उसका तरीका बदला है भंडारण करना संभालकर रखता, संजोना उसे बखूबी आता है। सर्दियों के मौसम के लिए लिखा –

''वह हिम के कारण अपने घरवालों के लिए नहीं डरती क्योंकि वे सब दोहरे वस्त्र पहनते है'' वह अपने पलंग के कंबल बनाती (सुक्ति ग्रंथ 31:21) और महीन छालटी और बैगंनी कपड़े पहनती है।

* विभागाध्यक्ष हिन्दी, संत अलॉयसियस महाविद्यालय, जबलपुर

परिवार की प्रथम शिक्षक उसके परिवार की नारी मां, बहन, दादी या नानी है जो ज्ञान का प्रकाश देती इसलिए परिवार प्रथम पाठ्शाला है। लिखा है :-

उसकी जिव्हा मधुर शिक्षा देती है

न केवल आने बालक- बालिका अपितु अपने घरवालों के आचरण का निरीक्षण करती है। एक ऐसे समाज की कल्पना की गई जिसमें वह अपने घर से सच्चरित्र की शुरूआत करती है और उससे आसपास का वातावरण भी सुधर जाता है सुन्दर, सौहार्द्रपूर्ण परिवेश बनाने के लिए स्वयं उदाहरण देती है, इस संदर्भ में उसके परिश्रम का मूल्य आंका गया है-

क्योंकि वह आलस्य की रोटी नहीं खाती उसके पुत्र उठकर उसे धन्य कहते है। उसका पति उसकी प्रशंसा करता है।

हम कह सकते है सुक्ति ग्रन्थ 31:26, 27, 28 कि वह मिट्टी के घरौदों को भी स्वर्ग बना सकती है उसका त्याग अनोखा है वह कभी-कभी देश के लिए अपने पुत्र को बलिदान करती है। इसके लिए वह अपने बच्चों का बिछोह सहती है- यहाँ तक की दूसरों के पुत्र को भी अपनाने से नहीं चूकती संत योहन रचित सुसमाचार 19 का 25 से 27 में लिखा है।

''ईसा की माता, उसकी बहन क्लोपस की पत्नी मरियम मैग्दलीना, उनके क्रूस के पास खड़ी थी ईसा की माता उनके पास अपने एक शिष्य को जिसे वह प्यार करते थे, देखा उन्होने अपने माता से कहा - भद्रे यह आपका पुत्र है इसके बाद उन्होंने उस शिष्य से कहा यह तुम्हारी माता है उस समय से उस शिष्य ने उसे अपने यहां आश्रय दिया।

उसका मन तो ममता से भरा है, वृद्धा स्त्रियों के सदंर्भ में भी ज्ञान दिया गया है कि-

''वृद्धाओं का आचरण प्रभु भक्तों के अनुरूप हो, वे किसी की झूठी निंदा न करें, वे अपने सदाचरण द्वारा- तरूण स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दे कि वे अपने पति और बच्चों को प्यार करे। समझदार, शुद्ध और सुशील हो। अपने घर का अच्छा प्रबंध करें। तीतुस के नाम पत्र 2:15

यदि कभी वह सख्त है तो केवल अनुशासित कर सुमार्ग पर ले जाने के लिए उसका श्रृंगार उसका आभूषण, उसका सौन्दर्य, उसका परिवार है। उसका आंतरिक सौन्दर्य उसके गुण है, वह नदी की धारा है, वो पहाड़ों को काटकर रास्ते बना लेती है। वह दुनिया के दुखों के थपेड़ों का सामना करते हुये चल पड़ती है, चलती रहती है।

एक सच्चे गृहस्थ के लिए नये नियम के अनुसार ये उदाहरण स्पष्ट है जिसमें महिलाओं का योगदान किसी से पीछे नहीं।

''जो मेरी बातें सुनता है, उन पर चलता हैं, वह उस समझदार मनुष्य की तरह है, जिसने चट्टान पर घर बनवाया था। पानी बरसा नदियों में बाढ़ आई, आंधिया चली और उनके घर से टकराई तब भी वह घर नहीं ढ़हा, क्योंकि उसकी नींव चट्टान पर डाली गई।''

अत: हम कह सकते है वह कंधे से कंधा मिलाकर चलती है, अत: उसका घर चट्टान पर रहता है कोई उसे सहज ही ध्वस्त नहीं कर सकता है। आधुनिक युग में महिलायें बड़े से बड़ा व्यापार संभालती है निर्णय लेने बाईबल में उनकी दूरदर्शिता की प्रशंसा की गई है -

''वह विचार कर खेत चुनती और खरीदती है वह अपनी कमाई से दाखबारी लगाती है। सुक्ति ग्रंथ 31:16

वह छालटी के वस्त्र चुन कर बेचती और व्यापारी को कमर बंद बेचा करती है क्रय-विक्रय मूल्य लाभ मितव्यता का वह पूर्णध्यान रखती है।

पुराना नियम बाईबल में शिक्षा की महत्ता प्रतिपादित की गई है और प्रवक्ता ग्रंथ में उसके मूल्य बेशकीमती माना है दृष्टव्य है।

''सुशिक्षित पत्नी अमूल्य है।''

रूप से नहीं अपितु शालीनता से उसको गृहस्थ जीवन की झांकी अभिव्यक्त की है।

''शालीन पत्नी का लावण्य असीम है, सुव्यवस्थित घर में साध्वी का सौन्दर्य ईश्वर के पर्वत पर उदीयमम सूर्य में सदृश्य है।'' - प्रवक्ता ग्रंथ 26, 4, 20

उसके सुस्वस्थ शरीर पर उसके मुख का सौन्दर्य पवित्र दीपवृक्ष पर चमकते हुये दीपक की तरह शोभायमान है।

''साध्वी पत्नी के हृदय में ईश्वर की आज्ञाऐ है। सुदृढ़ आधार पर शाश्वत् नींव की तरह है।

- प्रवक्ता ग्रंथ -26, 23, 24

स्त्रियों के सौन्दर्य में आभूषण के चित्र प्रतिबिबिंत कर व्यकित्व को बनाये रखने को ज्यादा महत्व दिया गया है इसायाह का ग्रन्थ में केवल श्रृंगार प्रिय स्त्रियों को सजग किया गया और चेतावनी भी वर्णित है।

नूपूर, बिन्दी, बाली, कंकण, दुपट्टा, चूड़ा, भुजवंध, करधनी, इत्रदान और तांबीज अंगुठी, नथ, कीमती वस्त्र, ओढ़नी, लबादा, बटुआ, दर्पण छालटी, किरीट, शाल।

प्राचीन काल से ही स्त्रियाँ अपने गृह का प्रबंधन करने में किसी भी वक्त पीछे नहीं है खोये हुये सिक्के का दृष्टांत जिसे लूकस रचित समाचार में उन्होंने आध्यात्म की ओर बने रहते का या भटक हुये व्यक्ति की पुन: ईश्वर की ओर उन्मुख होने पर खुशियाँ मनाने की बात कही है किन्तु सामान्यत स्त्रियां अपने दायित्व का निर्वहन कैसे करती है उसका दृष्टांत - लूकस 15 8 से 10 में देखिये:-

''अथवा कौन ऐसी स्त्री होगी जिसके पास दस सिक्के हो और उनमें एक भी खो जाये तो बत्ती जलाकर और घर बुहार कर सावधानी से तब तक न खोजती रहे है, जब तक उसे नहीं पाये पाने पर वह अपनी सखियों और पड़ोसियों को बुलाकर कहती है मेरे साथ आनंद मनाओं क्योंकि मैंने जो सिक्का खोया था, उसे पा लिया है, मैं तुमसे कहता हूँ इसी प्रकार ईश्वर के इस एक पश्चातापी पापी के लिए आनंद मनाते है।''

ईसा मृत्यु के बाद जब जी उठे तो एक अच्छे सन्देशवाहक के रूप में स्त्री ने ही भूमिका निभाई-

मरियम कब्र के पास बाहर रोती रही उसने रोते-रोते झुक कर कब्र के भीतर दृष्टि डाली। जहाँ ईसा का शव रखा हुआ था वहॉ उजले वस्त्र पहने दो स्वर्गदूतों को देखा एक के सिरहाने दूसरे का पैताने। दूतों ने उससे कहा भद्रे आप क्यों रोती है उसने उत्तर दिया वो मेरे प्रभु को उठा ले गये है और मैं नही जानती कि उन्होंने कहाँ रखा है वह यह कहकर मुड़ी और उसने ईसा को वहाँ खड़ा देखा किन्तु उन्हें पहचान नहीं सकी, ईसा ने उनसे कहा माता आप क्यों रोती हो, किसे ढूँढती है। मरियम ने उन्हें माली समझ कर कहा महोदय यदि आप उन्हें उठा ले गये तो मुझे बता दीजिए कि आपने उन्हें कहाँ रखा है और मैं उन्हें ले जाऊँगी। इस पर ईसा ने उनसे कहा मरियम उसने मुड़कर इब्रानी में रव्वोनी

अर्थात गुरुवर ईसा ने उनसे कहा चरणों में लिपट कर मुझे मत रोको, मैं अब तक पिता के पास ऊपर नही गया हूँ मेरे भाइयों के पास जाकर उनसे यह कहों, कि मैं अपने पिता और तुम्हारे पिता अपने ईश्वर और तुम्हारे ईश्वर के पास ऊपर जा रहा हूँ। मरियम मग्दलीन ने जाकर शिष्यों से कहा कि मैंने प्रभु की देखा और उन्होंने मुझे यह संदेश दिया हैं।

सतंमती 20 11 से 18 तक

बाइबिल में पत्नी के परित्याग करने वालों के लिए भी नियम बनाये है, अकारण किसी पर लांछन लगाना, दूसरी स्त्री से सबंधों के कारण अपनी पत्नी का परित्याग कर देते है, यह वस्तुओं का लेन-देन नहीं बल्कि सम्पूर्ण जीवन का प्रश्न हैं, क्योंकि उसमें भी रक्त की लालिमा है उसकी भी भावनायें है, जिसको आहत करना दुखों को आमंत्रण देना है अत: लिखा भी है-

ईसा गलीलिया चले गये और यर्दन के पार यहूदीया पहुंचे। एक विशाल जन समूह उनके पीछे हो लिया और ईसा ने वहां लोगों को चंगा किया। फरीसी ईसा के पास आये और परीक्षा लेते हुये उन्होंने यह प्रश्न किया क्या किसी भी कारण से अपनी पत्नी का परित्याग करना उचित है ईसा न उत्तर दिया क्या तुम लोगों ने यह नहीं पढ़ा कि सृष्टिकर्ता प्रारंभ ही से उन्हें नर-नारी बनाया।

संतमती 19.1 से 5 तक

विधवाओं के प्रति सम्मान का दृष्टिकोण प्राचीनकाल से समाज में विद्यमान है उनकी सहायता करने ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धा हैं।

निष्कर्ष -

हम कह सकते है कि नारियों की पारिवारिक दायित्व अहम् भूमिकाओं के साथ उनको आत्मनिर्भरता स्वावलंबन, प्रतिष्ठा को सदैव बनाये रखना, मानव जाति का फर्ज हैं तभी हम एक राष्ट्र को महान बनाये रखने का आव्हान कर सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. पुराना नियम बाईबल
2. नया नियम बाईबल

ANITA DESAI'S CRY, THE PEACOCK : A PSYCHOLOGICAL STUDY

Dr. Rashmi Singh*

ABSTRACT

Cry the Peacock, Anita Desai's first novel, has been described as a trendsetter in the field of psychoanalytical realism. It explores the inner world of the main protagonist, Maya, and demonstrates her fear, insecurity and strange behavior. The married life of Maya and Gautama is mutually opposed. Gautama is a friend of Maya's father, prosperous middle-aged lawyer, very much older than Maya, is incapable of understanding her genuine feelings and emotions. Maya is full of life and wants to enjoy life to the utmost. To her, sexual satisfaction is a necessity and the total denial of it may give mental disturbance. She is interested in all the good things of life - nature, birds and animals, poetry and dance. She loses herself in the enjoyment of beautiful sights and sounds. The cries of birds evoke a sympathetic chord in her. She is presented in the novel as a woman who longs for pleasures of life. The novel portrays the inner emotional world of Maya who is the victim of city life. She feels estranged from her husband's world and feels rejected and utterly lonely in the house. This paper is an effort to portray the psyche of a woman on the verge of insanity and the factors responsible for that.

Key Words : *psychoanalytical realism, insecurity, insanity*

In her first novel, Cry the Peacock (1963), Anita Desai portrays the psychic tumult of a young and sensitive married girl Maya who is haunted by a childhood prophecy of a fatal disaster. She is the daughter of a rich advocate in Lucknow. Being alone in the family, her mother being dead and brother having gun toy made especially for her, painted in her favorite colors and set moving according to her tunes. After marriage Maya has to leave her father. At every step she compares Gautama with her father to the disadvantage of the former because she fails to realize that a father-daughter relationship is different from a husband-wife relationship. Having lived a carefree life under the indulgent attentions of her loving father, Maya desires to have similar attentions from her husband Gautama, a father surrogate. When Gautama, a busy, prosperous lawyer, too much engrossed in his own vocational affairs, fails to meet her demands, she feels neglected and miserable. Seeing her morbidity, her husband warns her of her turning neurotic and blames her father for spoiling her.

The loving attention of her father makes Maya oblivious of the deadly shadow; but as her husband Gautama fails to satisfy her intense longing for love and life, she is left to the solitude and silence of the house which prey upon her. She muses over her husband's lack of love for her and once, in a fit of intense despair and agony, tells him straight to his face: "Oh, you know nothing of me and of how can I love. How I want to love. How it is important to me. But you, you've never loved. And you don't love me. . . ." She is longing for the companionship like that of Radha and Krishna. It is a communication that she seeks - the true marriage in which body, mind and soul unite - the sort which the peacock seeks when it shrieks out its inside in its shrill intense mating calls." The cries of peacocks in the novel represent her cries of love, which simultaneously invite their death. Like her, they are

***Associate Professor, Jabalpur Public College, Jabalpur (M.P.)**

creatures of exotic wild and will not rest till they have danced the dance of death. She describes how they danced and produced a remarkable impact on her mind:

In the shadows I saw peacocks dancing, the thousand eyes upon their shimmering feathers gazing steadfastly, unwinkingly upon the final truth - Death. I heard their thirst and they gazed at the rain clouds, their passion as they hunted for their mates. With them, I trembled and panted and paced the burning rocks. Agony, agony, the moral agony of their cry lover and for death."

(Cry, the Peacock, 96)

Temperamentally there is no compatibility between Maya and Gautama. Maya has romantic love for the beautiful, the colorful and the sensuous; Gautama is not romantic and has no use for flowers. As symbolized by her name she stands for the world of sensations. Gautama's name on the other hand, symbolizes asceticism, detachment from life. He is realistic and rational. He has philosophical detachment towards life as preached in the Bhagwad Gita. Such irreconcilably different temperaments are bound to have marital disharmony. The gap of communication between them leaves her lonely to brood over the morbid thoughts of the albino astrologer's prophecy.

Although the reason for Maya's neurosis is, however, not her father fixation though it aids to hasten her tragedy, but persistent obsession of the prediction by the albino astrologer of death either for her or her husband within four years of their marriage. Maya is so much possessed by the vision of albino astrologer that she recalls his talk about the myth surrounding the peacock's cry. Listening to the cries of peacock in the rainy season, she realizes that she should never sleep in peace. She is caught in the net of inescapable. Being intensely in love with life she turns hysteric over the creeping fear of death, "Am I gone insane? Father! Brother! Husband! Who is my savior? I am in a need of one. I am dying, and I am in love with living. I am in Love and I am dying. God let me sleep, forget rest. But no, I'll never sleep again. There is no rest anymore- only death and waiting."

Surprisingly, Maya's suffering is also her own creation. This is the trait that governs the protagonists of Anita Desai. Dance and dinner cause her headache. The ultra-modern sense of enjoying the life becomes a threat. Her own house is presented as a prison in disguise. The colorful world has been presented to reveal a dark side of evil and ugliness.

The novel portrays the inner emotional world of Maya who is the victim of city life. She feels estranged from her husband's world and feels rejected and utterly lonely in the house. The city plays a crucial role in widening the marital gap between Gautama and Maya. The indifferent behavior of the husband's family also increases her sense of loneliness which gradually develops into an actual sense of alienation. She feels separated from the world of Gautama who does not want to be "interrupted in his thinking" by trivial matters such as the death of a pet dog. She feels the absence of her husband in the house for long hours. Whenever he comes he gets busy with his clients or discusses politics and philosophy which do not interest her. The solitude and silence of the house prey upon Maya. Also, the death of her pet dog starts a chain of reminiscence and reverie.

Desai's female protagonists are generally caught in a web of painful circumstances, their struggle and the outcome of which is usually the basis of the novel. The struggle, one can readily see is not without purpose and the aim is to achieve the sort of harmony. The major concerns of the writer are loveliness, depression and solitude.

The Story of Maya's life seems to be one of a three-fold pattern of events that can be summed up as: deprivation, alienation and elimination respectively. In the first place, Maya has been deprived of the love of mother, brother, and later her father.

Secondly she is alienated from her husband and in the end she brings about his elimination from life and her own self from her family and society. Maya is an instinctive woman of passions and emotions. Gautama, on the other hand, is a philosophical intellectual. She expects some emotional and physical satisfaction in married life but both of them are denied her, one by Gautama's cold intellectuality and the other by his age.

Despite all the luxurious, the home still lacks the vital family spirit. She says that she loves Gautama, rarely shows her love in deeds. Gautama, on the contrary is gentle and patient with her, except those times when she is too unreasonable. Even then he blames her father and not Maya herself. For Maya it is only a push, for Gautama it is death. While others have been removed from her life in a subtle way, her murder of Gautama is her most daring act. Gautama is a faithful husband who loves and cares her in his own way yet Maya never satisfied and happy.

Marital relationships are established with the explicit purpose of providing companionship to each other. However, the element of companionship is sadly missing in the relationship between Maya and Gautama. Though she is fond of possessing books by Tagore, Keats, Shelley, she hardly ever reads them. This tendency continues after marriage and Gautama points out to her, that she never reads the newspaper or a book neither does she involve herself in any extra-curricular activity.

Maya fails both in creating an identity for herself and in leading a stable life. The cry of peacock is the cry of the natural instinct of a woman who is unfulfilled. But such a fulfillment is denied to Maya. She realizes that she wants Gautama's physical presence, his love and a normal life. She is capable of empathy which enables her to experience what the peacock and peahen are experiencing but this makes her feel all the more intensely that though there is an emotional arousal, there is no physical fulfillment which is the cause of her agony. Maya pushes Gautama off the parapet of their house. Thus, she murders her husband in a fit of insane fury and commits suicide.

Through Maya, the novelist has tried to stress the great yearning of the woman to be understood by her male partner. Thus, "Cry, the Peacock" is a pioneering effort towards delineating the psychological problems of an alienated person. Anita Desai looks into the reasons for marital discord and illustrates how such discord affects the family. The matrimonial bonds that bind the two were very fragile and tenuous. Lack of communion was the chief cause of intricacies in the life of Maya and Gautama. Maya suffered due to alienation and the wide gap between Maya's father and Gautama. Maya identifies herself with the peacocks in the agony of ecstasy of their fatal love-experience? This novel presents an impression of the marital incoherence and encountered conjugal life. Maya seems to be innocent and extremely sensitive.

This novel Cry, the Peacock exposes an impression of marital incongruity and unhappy conjugal life. No other writer is so much concerned with the life of young men and women in India cities as Anita Desai.

References:

1. Navarro-Tajero, Antonia. "Modern Indian Women Writers in English." Web, 8 Feb. 2010.
2. Desai, Anita. Cry, the Peacock. New Delhi: Orient Paperbacks, 2006.
3. Shrivastava, Sharad (Dr.) The New Woman in Indian English Fiction, New Delhi: Creative Books, 2000.
4. Beaunoir, Simon de. The Second Sex. trans. H. M. Parshley. Harmondsworth: Panguine Books, 1975. Belliappa, Meena.
5. Anita Desai: A Study of Her Fiction, Calcutta: Writers Workshop, 1971.

ROLE OF DIGITAL LIBRARY IN HIGHER EDUCATION & ITS CHALLENGES

Smt. Jaya Chaturvedi*
Smt. Preeti Sahu**

ABSTRACT

A digital library is nothing but the transformation from traditional library. The digital libraries concept comes into existence in the 21st century. Virtual library, electronic library, library without walls and digital library are synonymous to each other. Digital libraries have the following characteristics -they store, preserve, distribute and protect contents in different formats and, at the same time, they allow interaction between the user and the contents; they are always present, both geographically and over time; they can make works internationally known, enhancing referencing and citations; they can make public products of the educational process and let them be used as inputs for further learning. In this study, we have to discuss about the role of digital library in higher education, its challenges, issues and Using digital library, access anyone, anytime, and in any form.

The digital library is a collection of services, collection of information objects, supporting users with information objects, organization and preservation of those objects, availability directly or indirectly, and electronic/digital availability. The primary objective of digital library is to improve the access as well as it also includes the cost saving, preservation, keeping peace with technology and information sharing. . Though the focus of this definition is on the document collection, it stresses the fact that the digital libraries are much more than a random assembly of digital objects.

They retain the several qualities of traditional libraries such as a defined community of users, focused collections, long-term availability, the possibility of selecting, organizing, preserving and sharing resources The digital libraries are sometimes perceived as institutions, though this is not as dominant as the previous definition. The following definition given by the Digital Library Federation (DLF) brings out the essence of this perception. "Digital Libraries are organization that provide the resources, including the specialized staff to select, structure, offer intellectual access to interpret, three distribute, preserve the integrity of and ensure the persistence over time of collections of digital works so that they are readily and economically available for use by a defined community or set of communities." (DLF 2001)

Over the centuries, libraries have been the keepers and distributors of books, journals, maps and other materials that are used by students in the learning process. They have also been the legal deposit of part of the products of scholarly publications - theses & dissertations, articles, technical reports, etc. In general, students have been patrons of the libraries of their institutions. In order to make more contents available and thus benefit students and faculty, pools of institutions have engaged in commuting items and/or their copies. There is no reason for digital libraries not to have the same functions of traditional libraries, except that they can add functions and value due to their digital and networked nature.

***Asst. Professor, Jabalpur Public College, Karmeta, Jabalpur**
****** Librarian, Jabalpur Public College, Karmeta, Jabalpur**

Necessity of Digitization :-

- **To preserve the Documents :** That is to allow people to read older or unique documents without damage to the originals.
- **To make the documents more accessible :** This is to serve the existing users better; e.g. to allow the users to search the full text of the documents or to serve more users than envisaged in remote locations, example, more than one person at a time.
- **Converting and reusing the establishing facts :** To reuse the documents. It means to convert documents into different formats; for example to use images in a slideshow and to adopt the content for a different purpose.
- **Management of documents in all formats in a unified way :** texts, animations, interactive exercises, audio files, video streams, e-books, e-journals and online tests can be stored, described and distributed through computers and networks. Content sharing - authors can make their contents available for other faculty to aggregate into their courseware. This can be done without duplication, simply by 'pointing' to the contents with the suitable set of metadata elements.
- **Interactivity :** contents that are managed by digital libraries can be interactive and based on multimedia. Students can listen to soundtracks, view animated images, solve exercises and have them checked online, write and send comments to authors and/or tutors.
- **Customization :** some users may require special characteristics of the contents and the system. This is true when people with special needs are involved, for example, persons who are blind or visually impaired.
- **Cross-institution cooperation :** digital libraries in general are connected to the Internet, this allows that contents be used from different cooperating institutions, as long as the LOs (Loss of service computing)are described (metadata) and managed in a suitable way.
- **Any place and at any time :** students study in different hours of the day any day of the week, this is more significant when distance learning is considered. Students can be in any country and accessing courseware anytime. Since digital libraries are available 24/7 (24 hours per day, 7 days per the week) and the Internet connects the whole world, courseware is always available from any geography.

Functional Components of Digital Library

Most digital libraries share common functional components. These include:

- **Selection and acquisition :** The typical processes covered in this component include the selection of documents to be added, the subscription of database and the digitization or conversion of documents to an appropriate digital form.
- **Organization :** The key process involved in this component is the assignment of the metadata (bibliographic information) to each document being added to the collection.
- **Indexing and storage :** This component carries out the indexing and storage of documents and metadata for efficient search and retrieval.
- **Search and retrieval :** This is the digital library interface used by the end users to browse,

search, retrieve and view the contents of the digital library. It is typically presented to the users as Hyper-Text Mark-up Language (HTML) page.

These mentioned components are the important characteristic of digital library, which differ it from others collections of online information.

Digital Library Challenges

Creating "effective" digital libraries pose serious challenges for existing and future technologies. The integration of digital media into traditional collections will not be straightforward, like previous new media (e.g., video audio tapes), because of the unique nature of digital information, which is less fixed, easily copied, and remotely accessible by multiple users simultaneously. Some specific challenges are resource discovery, digital collection development, digital library administration, copyright and licensing, etc., library of congress specified various challenges for building an effective digital library, which are grouped as broad categories as follows.

A. Building the resources

- Develop improved technology for digitizing analog materials
- Design search and retrieval tools that compensate for abbreviated or incomplete cataloging or descriptive information
- Design tools that facilitate the enhancement of cataloging or descriptive information by incorporating the contributions of users.

B. Interoperability

- Establish protocols and standards to facilitate the assembly of distributed digital libraries.

C. Intellectual property

- Address legal concerns associated with access, copying, and dissemination of physical and digital materials.

D. Effective access

- Integrate access to both digital and physical materials
- Develop approaches that can present heterogeneous resources in a coherent way
- Make the national digital library useful to different communities of users and for different purposes
- Provide more effective and flexible tools for transforming digital content to suit the need of end users.

E. Sustaining the resources

- Develop economic models for the support of the national digital library.

Advantages of Digital Libraries

Digital libraries bring significant advantages to the users through the following features:

- **Improved access :** Digital libraries are typically accessed through the Internet and Compact Disc-Read Only Memory (CD-ROM). They can be accessed virtually from anywhere and

at any time. They are not tied to the physical location and operating hours of traditional library.

- **Wider access :** A digital library can meet simultaneous access requests for a document by easily creating multiple instances or copies of the requested document. It can also meet the requirements of a larger population of users easily.
- **Improved information sharing :** Through the appropriate metadata and information exchange protocols, the digital libraries can easily share information with other similar digital libraries and provide enhanced access to users.
- **Improved preservation :** Since the electronic documents are not prone to physical wear and tear, their exact copies can easily be made, the digital libraries facilitate preservation of special and rare documents and artifacts by providing access to digital versions of these entities.
- **No physical boundary :** The user of a digital library need not to go to the library physically; people from worldwide can gain access to the same information, as long as an Internet connection is available.
- **Round the clock availability :** A major advantage of digital libraries is that people can gain access 24/7 to the information, i.e., users can access the information anytime / anyday provided the proper network connectivity.
- **Multiple accesses :** The same resources can be used simultaneously by a number of institutions and patrons.
- **Information retrieval :** The user is able to use any search term (word, phrase, title, name, and subject) to search the entire collection. Digital libraries can provide very user-friendly interfaces, giving clickable access to its resources properly.
- **Preservation and conservation :** Digitization is not a long-term preservation solution for physical collections but does succeed in providing access copies for materials that would otherwise fall to degradation from repeated use. Preservation and conservation of data in the digital library are one of an important issue.
- **Space :** Whereas traditional libraries are limited by storage space, digital libraries have the potential to store much more information; simply because digital information requires very little physical space to contain them and media storage technologies are more affordable than ever before.
- **Added value :** Certain characteristics of objects, primarily the quality of images, may be improved. Digitization can enhance legibility and remove visible flaws such as stains and discoloration.

Disadvantages

There are some disadvantages of digital libraries also, which are as follows:

- User authentication for access to collections
- Digital preservation

- Equity of access
- Interface design
- Interoperability between systems and software
- Information organization
- Training and development.

Conclusion

Libraries around the world have been working on this daunting set of challenges for several years now. The library/information center has to overcome the inhibitions and look ahead for the betterment of information services to the user community by successfully adopting the digital technology - the need of the hour and keep pace with world. It seems that the days may not far when the whole world would have digital libraries interconnecting all libraries to meet the academic and research needs within the short time. However, before digital libraries took over the library and information network, the country's archives laws needs to be changed to meet the current challenges in the areas of copyright protection of data and prevention of corruption of data.

When a digital library is created, all the functions that have been performed by the traditional library will have parallel in the digital and networked environment. In terms of preservation, the problem is more complex since two types are to be considered - the physical preservation (as traditional libraries) and the technological preservation, in a world of fast-changing technology. At the same time, a digital library can perform functions that are impossible with traditional situation and that aggregate value to higher education. These were presented in the second section of this work. Accessibility, availability, interaction, customization and reuse are strong reasons to use digital libraries for higher education even when there are challenges in the digital and networked environment.

References :

1. Follett Report. Joint Funding Councils Libraries Review Group; 1993.
2. Rajaraman V. In: Summary of Dr N Rudraiah Endowment Lecture. Gulbarga: Gulbarga University; 1999.
3. Mintzer, F C, Boyle, L. E., Cazes, A. N., Christian, B., Cox, S.C.Giordano, F. P., Gladney, H. M., Lee, J. C., Kelmanson, M. L.,Lirani, A., Magerlain, K., Pavani, A. & Schiattarella, F., "Toward online, worldwide access of the Vatican Library materials", IBM Journal of Research and Development, Vol 40, No 2., 1996, pp 139-162, available http://www.research.ibm.com/journal/rd/402/mintzer.html,
4. NDLTD - Networked Digital Library of Theses and Dissertations, available http://www.ndltd.org/
5. RLG - Research Libraries Group, available http://www.rlg.org/
6. CLIR - Council on Library and Information Resources, available http:// www.clir.org /
7. Digital Library Federation. (2001), Registry of Digitized Books and Serial Publication, Available at http://www.digilib.org/collections
8. State Central Library, Hyderabad

9. The National Library Of India -Calculta
10. Delhi Public, Library
11. Saraswati Mahal Or Tanjour Maharaja, Serforj's Saraswati Mahal, Library, Tamil Nadu
12. Anna, Centerary Library, Chennai, Tamil Nadu
13. Krishndas Sharma, Central Library, Goa
14. Allahabad Public Library, UP
15. Smt Hansa Mahta Library, Gujrat
16. Connemara Public Library, Chennai, Tamil Nadu
17. State Central Library, Tiruvananthapuram,Kerela

EMERGING LEADERSHIP DYNAMICS IN TODAY'S CHANGING MANAGEMENT SCENARIO

Dr. Sonali Dhawan*

ABSTRACT

"Management's concern and management's responsibility are everything that affects the performance of the institution and its results - whether inside or outside, whether under the institution's control or totally beyond it."

-- Peter Drucker (1999)

Leadership demands living by the enduring principles that produce success, and augmenting them with new qualities that enable speed, flexibility, risk-taking, an obsession with goals, and new levels of communication within an organization. When leaders succeed in doing these things the traditional measures of success inevitably flow.

Although all managers perform the traditional management functions of planning, organizing, staffing, controlling and directing, it seems that the higher the management level within an organization the more important it is for the manager to exhibit great leadership qualities. At upper management levels the manager's duties are concerned less with the minutia of running the organization and more on setting strategic goals and maintaining a collective focus on corporate direction.

Industrial era management issues involve competitive strategy, leadership, creativity, teamwork and technology. However, the paradigm is shifting and managers must adapt new issues created by a global economy and changing demographics. This results in new opportunities for management and leadership.

This research aims to find out the new approach towards leadership and its issues. For this primary as well as secondary data has been used.

In today's informative world, where we are having access to any kind of information is just a click away, it is very difficult to become a role model to someone. Because every person thinks that there's no big deal in having a knowledge about specific things, as it is available in abundance. But the problem with the generation is people are having access to information but they are not informative.

Leadership demands a person who can produce success, and augmenting them with new qualities that enable speed, flexibility, risk-taking, a passion with goals, and new levels of communication within an organization. When leaders succeed in doing these things the traditional measures of success inevitably flow.

Apart from the basic things which a manager has to follow Industrial era management issues involve competitive strategy, leadership, creativity, teamwork and technology. However, the paradigm is shifting and managers must adapt new issues created by a global economy and changing demographics. This results in new opportunities for management and leadership.

***Assistant Professor, G.S.College of Commerce & Economics, Jabalpur [M.P]**

Leadership Dynamics can be learn from our own vedic texts, like in Gita. To be a leader one has to develop the emotional quotient, as lord Krishna has emphasised in Gita. A leader must know how and when to utilize the emotion effectively.

KEY POINTS FOR DYNAMIC LEADERSHIP

KEY POINT 1: EFFECTIVE LEADERSHIP DRIVES SUCCESS

Leadership is often defined relative to our perspectives of particular people we admire, believe and are willing to support. These leaders appeal to our specific ethnic, religious, cultural, political or national characteristics. This relatively one dimensional approach, however, allows the leadership process to be less demanding because the homogeneity of the followers.

The inherent qualities that make musicians great today are the same as those of Mozart's time. So too, are the qualities of great leaders. Leadership demands living by the enduring principles that produce success, and augmenting them with the post-industrial (Also referred to as post modern.) qualities that enable speed, flexibility, risk-taking, an obsession with goals, and new levels of communication within an organization (Citrin, 2000).

Furthermore, great leaders continuously seek potential leaders within their organizations and are quick to in develop leadership qualities in them. These gender-neutral qualities, shown in Table 1, enable leaders to appeal to followers that have a wide variety of demographic and psychological characteristics

The common approach of great leaders that they refused to adhere solely to the traditional command-and-control structure favored by traditional organizations but favor a more open approach. They reason that if their followers are given reasonable decision-making power, even at the lowest ranks, natural leaders will rise to the top. Central to this concept is the conviction that leaders must recognize and nurture the creativity inherent in their followers (Griffith, 1998).

Citrin and Neff (2000, p. 4) declare that successful leadership can be distilled into the phrase"doing the right things right." "When leaders succeed in doing the right things - both personally and within their organizations - the traditional measures of success inevitably flow."

Table 1: Personal Qualities of Great Leaders

1. Core Qualities: Integrity, Honesty, Compassion, Courage.
2. Have Judgement and Character.
3. Cannot be taught like technical competence
4. Persistent, Motivated, Dedicated
5. Speak to people on their own level.
6. Are truly focused on their people. Are sincere and focused on them.
7. Are direct.
7. Capable of kindling vision and energy.
8. Are accessable. (Lesser leaders are isolated.)
9. Are self-sacrificing

10. Radiate Confidence.

11. Stays focused on the "big picture"

Source : Compiled from: Axelrod, A. (1999). Patton on Leadership: Stategic Lessons for Corporate Warfare, and Baron, D. (1999). Moses on Management.

KEY POINT 2: ACCURATE KNOWLEDGE IS CRITICAL FOR SURVIVAL

Creating knowledge.

The fact that information is not interpreted the same by all people due to their physical and mental diversity, appears to have been an age old problem for managers but it has become an incredibly important key point for post-industrial managers and leaders. This is because even though individuals may acquire information similarly, they interpret it relative to their unique culture, gender, environment, and mental state. Based on this interpretation they form their ideas of what constitutes knowledge, meaning and reality. Unfortunately, incorrect interpretation can create ambiguity, uncertainty, and anxiety. Consequently, contemporary managers must be fully cognizant of this phenomenon in order to adjust their management style and leadership approach in ways that will appeal to their subordinates with the result of achieving organizational success.

Knowledge is a mental state of having familiarity with or belief in something through sensory or non-sensory experience. Empirical, sensory experiences generate a posterior knowledge that forms the basis of explicit beliefs through conscious reaction to the sensory information as well as implicit beliefs through rational reaction to sensory information. Non-sensory, non-empirical experience produces a priori knowledge which is formed through pure reason or understanding (Moser & Vander Nat, 1995).

Means of knowledge acquisition.

We acquire knowledge through sensory and non-sensory experiences. The sensory experiences include information received from formal study, empirical experiments, random sensory observations (sight, hearing, touch, taste) as well as non-sensory experiences such as rational thought. Even though individuals may acquire information similarly, they interpret it relative to their unique condition in order to regard it as knowledge or opinion.

It has already been pointed out that Stephen Stich posited the idea of cognitive diversity to explain how information acquisition is subjected to a person's cultural and environmental differences. Compounding the diversity problem is the fact that our cognitive condition is in a state of flux (Moser & Vander Nat, 1995). Leonard and Straus (Leonard, 1997)add that individuals have varying approaches as to how they assimilate data, make decisions, solve problems, and relate to others. These differences seriously affect how we process information and acquire knowledge and consequently, have important implications for postmodern managers.

KEY POINT 3: CLEAR CONCEPTS OF MEANING AND REALITY CREATE CONFIDENCE

Our concept of meaning and reality is based on a mental state that results from melding a wide array of implicit and empirical experiences. These include our personal sense of right and wrong, interpretation of physical sensory information, and psychological projections. In addition, Borgmann (1992) clearly points out that our sense of relationship to other people, religious interpretations of responsibility, and our cultural morality standard affect our concept of meaning and value. Further-

more, their effect becomes more pronounced as society moves through major periods such as the pre-modern, modern and postmodern eras.

KEY POINT 4: MANAGE THE TRANSFORMATION OF INFORMATION INTO KNOWLEDGE AND MEANING

It seems helpful to envision the cultural, environmental and personality differences that affect our perception of information as layers or shells around our brain as shown in figure 2. The layers represent some of the major areas that affect our perception of external information as it enters our mind. This writer envisions that sensory information is refracted as it passes through each layer and is reinterpreted relative to that particular layer.

The process of sensory information refraction is analogous to an eagle or osprey in the act of aerial fishing. If we were at their position we could see the same fish (same sensory information) but because of the limitations of our physical sight, our belief of where the fish is located would be false because we cannot easily compensate for water refraction. The bird, on the other hand, is equipped with eyes that compensate for the refraction, which means its belief of where the fish is located, is true.

Figure 2: Sensory Information Filters and Refraction

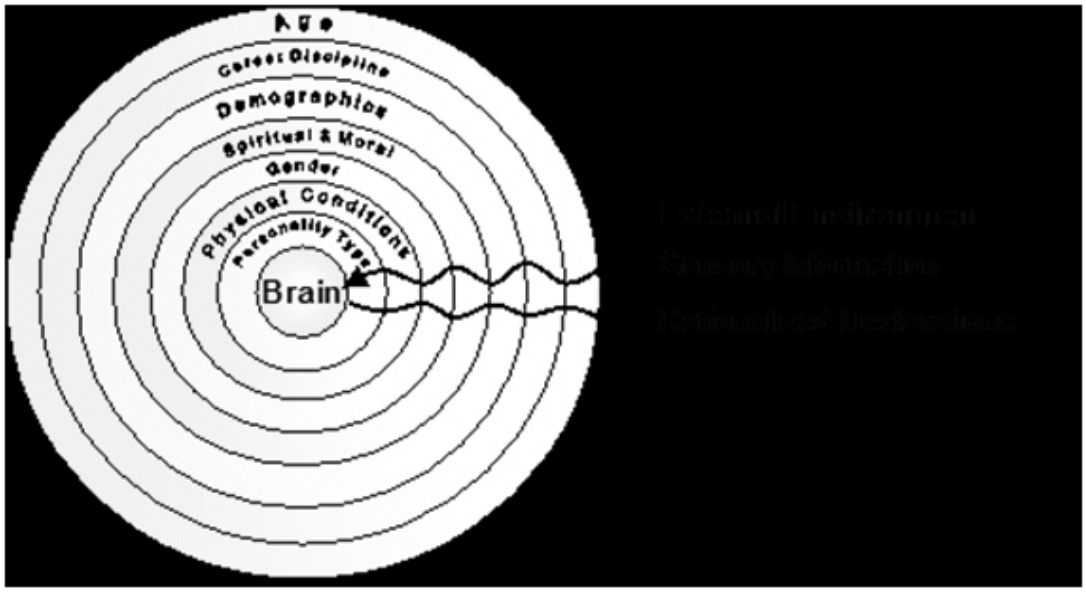

People seem to interpret sensory information at each layer relative to their experience at each level, which means that different individuals may form different conclusions regarding the same piece of information. This becomes clear when we consider the particular aspects of each layer as presented in the following sections:-

Career Discipline

- **Gender**
- **Physical Condition**
- **Personality Types**

- **Physical Brain**
- **Results of Personal Information Transformation**

KEY POINT 5: POSTMODERN ORGANIZATION THEORY PRODUCES A NEW PARADIGM

Organization theorists base their ideas on a basic set of assumptions or paradigms, which they regard as the reality of their discipline. According to Drucker, (1999, p. 5) two sets of assumptions have defined industrial era organization and management theory since the 1930's.

The first set is concerned with the discipline of management:

1. "Management is Business Management.
2. There is - or there must be - one right organization structure.
3. There is - or there must be - one right way to manage people."

The second set of assumptions underlines the practice of management:

1. "Technologies, markets and end-users are given.
2. Management's scope is legally defined.
3. Management is internally focused.
4. The economy as defined by national boundaries is the 'ecology' of enterprise and management."

Based on these assumptions industrial era organization theories were concerned with social, demographic, and economic issues that related to a relatively stable command-and-control, production-oriented environment. Furthermore, they required established procedures for managing personnel and equipment as well as creation of formal organization structures to insure production stability.

8 RITUALS OF VISIONARY LEADERS

Robbin Sharma has given these 8 rituals to be a dynamic leader, in his book leadership wisdom:-

1. Line Pay check to Purpose. (The Ritual of a compelling future focus)
2. Manage by Mind, Lead by heart. (The Ritual Of Human Relations)
3. Reward routinely, Recognize Relentlessly (The Ritual of Team Unity)
4. Surrender to Change . (The Ritual of Adaptability and Change Management)
5. Focus on Worthy (The Ritual of Personal Effectiveness)
6. Leader lead thyself. (The Ritual of Self-Leadership)
7. See What All See, Think What None Think. (The Ritual of Creativity and Innovation)
8. Link Leadership to legacy. (The Ritual of Contribution and Significance)

Manager in the organization must follow these rituals to become a dynamic leader and lead the organization effectively.

Conclusion :-

One of the most critical issues confronting 21st century organizations is leadership. The need is great and if you and your organization are to reach your potential, it will only be accomplished through

effective leadership.

Leadership is much more than a destination, it's a journey. And as with a journey of any kind, you need to be prepared - prepared for both the expected obstacles and the unexpected detours. In fact, your leadership journey can be downright treacherous if you're not equipped to handle all that may lie ahead. So to insure your leadership effectiveness and success you need the right equipment, the right direction and the right guide.

That's where Leadership Dynamics comes in. Leadership Dynamics is committed to provide you with the necessary tools and equipment to make your leadership journey a success.

References

- Robin Sharma (2007). Leadership Wisdom from the monk who sold his Ferrari,24th edition, Harper Collins.
- Axelrod, A. (1999). Patton on leadership : strategic lessons for corporate warfare. Paramus, NJ: Prentice Hall.
- Beauchamp, T. L., and Bowie, Norman L. (1997). Ethical Theory and Business (5 th ed.). Upper Saddle River, NJ: Prentice Hall.
- Drucker, P. F. (1999). Management challenges for the 21st century (1st ed.). New York: HarperBusiness.
- Frankl, V. E. (1997). Man's search for ultimate meaning. New York: Insight Books.
- Gazzaniga, M. S. (1998). The mind's past. Berkeley: University of California Press.
- Handy, C. B. (1996). Beyond certainty : the changing worlds of organizations. Boston, Mass.: Harvard Business School Press.
- Griffith, V. (1998). Emergent Leadership, Financial Times, Fourth Quarter. Available:
- www.strategy-business.com/briefs/98402.
- Hassard, J. (1999). Postmodernism, philosophy and management: concepts and controversies. International Journal of Management Reviews, 1(2), 25.
- Hatch, M. J. (1997). Organization theory : modern, symbolic, and postmodern perspectives. Oxford; New York: Oxford University Press.
- Hesselbein, F., Goldsmith, M., & Beckhard, R. (1997). The organization of the future (1st ed.). San Francisco, Calif. : Jossey-Bass Publishers.
- Leonard, D. S., S. (1997). Putting your company's whole brain to work, Harvard Business
- Review on Management (pp. 109-136). Boston: Harvard Business School Press.
- Quinn, J., Anderson, P., & Finklestein, S. (1996). Managing professional intellect: Making the most of the best, Harvard Business Review on Management (Vol. 1998, pp. 181-205). Boston: Harvard Business School Press.
- Shafritz, J. M., & Ott, J. S. (2001). Classics of organization theory (5th ed.). Fort Worth: Harcourt College Publishers.
- Shaw, D. (1999). Keep Your Eye On the Ball, Ivey Business Journal, July, v63, i5, p24.

WOMEN EMPOWERMENT AND ICT EDUCATION

Smt. Anjulata Yadav*

ABSTRACT

Education is the most powerful weapon which you can use to change the world. Information and communications are closely linked to power and the ability to affect change. ICT is an umbrella term that includes any communication device or application, encompassing: radio, television, cellular phones, computer etc. Socially the majorities of Indian women are still tradition bound and are in disadvantageous position. ICTs are emerging as a powerful tool for women empowerment in a developing country like India. The sample size of the research was 100 trainees and 15 instructors of different Governmental and Nongovernmental Organizations of Jabalpur district. Researcher used random sampling technique to select the sample for the study. The data was collected with the help of self constructed questionnaire. The analysis of percentage representation used for the analysis of data indicated that the Age group, Marital status, Educational level had significant effect on different variable of women empowerment like Self confidence, Self awareness, Independence and Feeling of freedom. The study can be used to create awareness among women for betterment of their lives. This research concluded that the information and communication technology empowered a women in various areas like - social, educational, personal, psychological, political, technological and economical.

"India is a country of grand contradictions. While it is a global leader in the knowledge economy, it is also home to more than half the world's poor and illiterate people, most of whom are women." (Reddi & Sinha, 2004). The sex ratio improved slightly from 933 in 2001 to 940 in 2011. The gender gap between male (82.14%) and female (65.4%) literacy rates remain high at 17.10 as per 2011 Census. It is an important fact that no society will progress satisfactorily unless women, who constitute almost half of their population are given equal opportunities. The first Prime Minister of India Pandit Jawaharlal Nehru once said, "To awaken the people, it is women who must be awakened; once she is on the move, the family moves, the village moves and the nation moves" (quoted in Pillai, 1995; p. 62). So there is a greater need for bringing women in to main stream of development of India. ICT opens up a direct window for women to the outside world. Information now flows to them without distortion or any form of censoring, and they have access to same information as their male counterpart. ICT are closely linked to power and the ability to affect change. expanding information flows and by making communications more accessible, people living in poverty can make better choices, voice their opinions, demand their rights and have more power over their own lives.

Information technology has become a potent force in transforming social, economical, and political life globally. More and more, development strategists see the need for developing countries to embrace information technology both as a way to avoid further economical and social marginalization as well as to offer opportunities for both growth and diversification of their economies. Women within developing countries are in the deepest part of the divide, further removed from the information age

***Asst. Professor, Jabalpur Public College, Karmeta, Jabalpur**

than are the men whose poverty they share. The gender gap in the digital divide is of increasing concern; if access to and use of these technologies is directly linked to social and economic development, then it is imperative to ensure that women in developing countries understand the significance of these technologies and use them. If not, lack of access to information and communication technologies becomes a significant factor in the further marginalization of women from the economic, social, and political mainstream of their countries and of the world. Without full participation in the use of information technology, women are left without the key to participation in the global world of the twenty-first century. ICT can be a powerful catalyst for political, social and types of empowerment of women, and the promotion of gender equality. The Beijing Declaration and Platform for Action adopted at the Fourth World Conference on Women in 1995 drew attention to the emerging global communications network and its impact on public policies, as well as the attitudes and behavior of individuals. It called for the empowerment of women through enhancing their skills, knowledge, access to and use of information technologies. It also included a strategic objective: "Increase the participation and access of women to expression and decision making in and through the media and new technologies of communication".

Our Honorable former President Late Dr. A P J Abdul Kalam called this revolution of information as a nationwide movement to make India a superpower by using ICTs in both rural and urban areas. The development and proliferation of electronically communicated information has accelerated economic and social change across all areas of human activity worldwide - and it continues to do so at a rapid pace. While the use of information and communication technologies (ICTs) remains concentrated largely in the developed world, ICT diffusion is beginning to reach developing countries, including poor rural areas, bringing with it high hopes of positive development outcomes. Socially the majorities of Indian women are still tradition bound and are in a disadvantageous position. The principle of gender equality is enshrined in the Indian Constitution in its Preamble, Fundamental Rights, Fundamental Duties and Directive Principles. The Constitution not only grants equality to women, but also empowers the State to adopt measures of positive discrimination in favour of women. The GOI had maintained and support of women empowerment in plan and policy documents including Five years plans, the Panchayati raj, Acts and the National Policy for Women.

In the recent past, ICTs have been added to the women and gender equality debate. ICTs are being presented as a tool having potential to benefit women's 'empowerment' and a number of ICT projects that specifically target women have been established in several developed and underdeveloped countries. Before going to study the role of ICTs in women empowerment, is necessary to understand what is ICT.

Information and Communication Technologies (ICTs) are a diverse set of technological tools and resources to create, disseminate, store, bring value addition and manage information. The ICT sector consists of segments as diverse as telecommunications, television and radio broadcasting, computer hardware, software and services and electronic media, for example, the internet and electronic mail.

Role of ICTs in gender empowerment - Empowerment of women in the context of knowledge societies entails building up the abilities and skills of women to gain insight into the issues affecting them and also building up their capacity to voice their concerns. In this context ICTs are emerging as

a powerful tool for gender empowerment in many developing countries. There has been a rapid growth in the ICT sector since the late 1980s and the use of ICT has dramatically expanded since the 1990s. According to the World Bank, tele-density in India had reached 3.8 per cent of the population by 2001 (Jain 2006).

ICT and Women :-

In India, as elsewhere in the developing world, women play a central role in family, community and social development. However, women often remain invisible and unheard. Women more than men have to balance the complexities of surviving in extreme poverty, yet these women are excluded from discussion because they are often illiterate, they lack confidence and they lack mobility. ICT offer the opportunities for direct, interactive communication even by those who lack skills, who are illiterate, lack mobility and have little self-confidence. Here are some aspects of life which have a direct influence of ICT especially on women:

(i) Women's increased access to job Market and improve entrepreneurship using ICT

(ii) Increase of average household income in villages

(iii) Women empowerment

(iv) Shrinking Information Asymmetry through ICT.

(v) Improved Governance

(vi) Indigenous Knowledge

(vii) Easy-Family communication

(viii) Increase Social awareness

OBJECTIVE OF THE STUDY :-

To study the role of ICT education in the overall empowerment of rural women with reference to their

(1) Educational empowerment

(2) Economic empowerment

(3) Social empowerment

(4) Psychological empowerment

(5) Technological empowerment

(6) Political empowerment

METHODOLOGY :-

To understand the extent of the influence of ICT education on women empowerment, an exploratory research was conducted. Primary data was collected using survey questionnaires for women of the Jabalpur region. The method used in this study was aimed at eliciting response from women who are participants in the use of the burgeoning ICT technologies. These ICT factors include computer, mobile telephony technology, the internet and other facets of the changing methods and means of communication available to man today.

SAMPLE :-

For the present study the sample size was 100 trainees and 15 instructors of different Governmental and Nongovernmental nature of Organizations of Jabalpur district. Researcher used random sampling technique to select the sample for the study.

TOOLS USED :-

(1) Self constructed Questionnaire for trainees

(2) Self constructed Questionnaire for instructors

ANALYSIS OF DATA :-

The analysis of percentage representation used for the analysis of data collected with the help of questionnaires.

RESPONDENT PROFILE :-

In the study area total of 100 women (trainees) and 15 (instructors) respondents were taken by the researcher. Out of 100 respondents(trainees), the highest numbers 63 were taken from the age group of 25-35 years, 23 respondents from the age group of 35-45 years, and 14 from the age group of above 45 years. Majority of the respondents were college educated (41) followed by secondary school education (37), upper primary school education (43). Out of 15 (instructor) 6 were women and 9 were men.

FINDINGS OF THE STUDY :-

Findings of the study have been divided in two parts, first part shows the results of women trainees/ participants and second part show the result of instructors who trained the participants.

Table No. 1

Major Types Of empowerment	Percent
Social Empowerment	42.5%
Technalogical Empowerment	47.5%
Political Empowerment	37.5%
Psychological Empowerment	43%
Educational Empowerment	48%
Economical Empowerment	42%

TABLE OF RESULTS :-

The major types of empowerment that researcher experienced and analysed, are now summarised.

Educational empowerment

From data analysis we find that 48 percent women says that ICT provide educational empowerment because-

- ICT deliver information about whole world in a language they understand and a medium that they would be comfortable with.
- Wide knowledge of each area, understanding of new concepts.
- ICT help in non formal and adult women education

Economical empowerment

From data analysis we find that 42 percent women says that ICT education provide economical empowerment because-

- ICT helps them to increase their monthly income.
- ICT provide jobs and opportunities to merge with large industries.
- ICT education makes women economically sound that is source of other all types of women empowerment.

Social empowerment

From data analysis we find that 42.5 percent women says that they experienced social empowerment because-

- Gaining access to new and useful knowledge, information and awareness about a range of issues, topics and activities of interest to women. This new information and knowledge often provided mental stimulation and broadened participants' thinking.
- Participating in various activities with other women and people in positions of influence where you can openly discuss issues, share concerns and experiences, and reflect on issues affecting you.

Psychological empowerment

From data analysis we find that 43 percent women says that ICT education provide psychological empowerment because-

- An increase in self-confidence and selfesteem.
- Feeling more valued, respected.
- Greater motivation, inspiration, enthusiasm and interest to develop new skills and knowledge. o Feeling much less isolated from others (particularly other supportive women) and, as a result, experiencing greater wellbeing, happiness and enjoyment of life.

Technological empowerment

From data analysis we find that 47.5 percent women says that ICT education provide technological empowerment because-

- New knowledge, awareness and understanding about new ICTs and their potential benefits and impacts.

- The development of new skills, experience and greater confidence and competence in using new communication technologies.
- Advice and support in using email and the Internet, provided in ways that often met the participants' needs very well.

Political empowerment

From data analysis we find that 37.5 percent women says that ICT provide political empowerment because-

- Having a voice for their rights.
- Feel decision making capacity.
- Networking or meeting with people in government and industry and other women to discuss issues affecting women and women communities, and to organise various actions.

Forms of disempowerment experienced

As well as experiencing empowerment, some women also indicated that they experienced various forms of disempowerment. As with empowerment, there are clearly various degrees of disempowerment. The following provides a summary of these experiences.

Some participants indicated that they experienced the following forms of social disempowerment at times :

- Not obtaining the knowledge and information they wanted.
- Feeling uncomfortable participating in certain group activities or unable to talk about certain social or personal topics.

Some of the participants also indicated that they experienced various forms of technological disempowerment, including:

- Not gaining new skills or experience in using ICTs due to lack of hands-on experience, or being unable to afford computer equipment and Internet services.
- Being unable to understand the technical information provided by computer or Internet service providers.
- A lack of confidence and competence in using computers, email and the Internet or in speaking about these technologies.
- An increase in concern or fear about the potentially negative social impacts of new ICTs. Some women also experienced the political disempowerment at times:
- Feeling that your issues were not well understood or listened to by others.
- Being silenced or feeling restricted in talking about socially or politically controversial issues.

Psychological disempowerment were reported as being experienced by some women, including:

- Feeling very nervous or lacking confidence to speak out.
- Feeling that you are not valued or respected by the people of your society.

Some women also experienced the educational disempowerment at times :

- When ICT education not helpful to provide education in such a way in which they need.
- ICT education is costly to provide every one.

Some women also experienced the economical disempowerment at when they fail to get appropriate job and in economically lose.

FINDINGS FROM THE POINT OF VIEW OF INSTRUCTORS

Out of 15 instructors 6 were women and 9 were men and 14 instructors are agree that ICT education is very helpful in overall empowerment of a woman and support ICT education to empower women in various different areas.

CONCLUSIONS :-

The above study was carried out in the state of Rajasthan, one of the economically and technologically advanced states. In the recent years, through the implementation of various ICT related projects, the state is successful. There are also many projects for the greater involvement of women. The main object is to make the women both economically and socially strong. The study clearly found that the women were immensely benefited from the use of ICT. ICT has made a tremendous impact in imparting knowledge on modern technology and its uses. NGOs, SHGs working in the field, governmental agencies and other private agencies have also extended their help to promote ICT among the women. This study concluded that the ICT (information and communication technology) empower a woman in various areas like social, educational, psychological, political, technological and economical and well as few degree of disempowerment due to some internal and external reasons.

REFERENCES :-

- Dossani R. (2005), Enabling ICT for rural India. Retrieved from http://iisdb.stanford.edu/pubs/20972/Dossani _Rural_ICT_2005.pdf, 1st December 2010.
- Farida Khan , Rehana Ghadially, Journal of International Development Volume 22, Issue 5, "Empowerment through ICT education, access and use: A gender analysis of Muslim youth in India" pages 659-673, July 2010
- Gurumurthy A. (2004), Bridging the digital gender divide: Issues and insights on ICT forWomen's economic empowerment. New Delhi: UNIFEM.
- Nath, V. (2001), Empowerment and governance through information and communication technologies: women's perspective, Retrieved on November 2, 2004 http://www.cddc.vt.edu/knownet/arti cles/womenandICT.htm (DA: 11/02/04)
- Naveen, Prakash. 2002. "Evaluating the Impacts of the Gyandoot Project." Regional Development Dialog 24 (Autumn). United Nations Center for Regional Development.
- Tandon, N. (2006) Information and Communication Technologies in Bangladesh Trends, Opportunities and Options for Women Workers, Networked Intelligence for Development.

EMERGING RESEARCH JOURNAL

A Multidisciplinary Peer Reviewed (Refereed/Juried) International Journal

SUBSCRIPTION FORM TEMPLATE

I wish to subscribe to Emerging Research Journal for [1] [2] [3] Year(s). A Bank D.D. Bearing No. ..... Dated ..... for Rs./$ ..... drawn in favour Of **"JABALIPUR PUBLIC COLLEGE"** payble at Jabalpur, towards subscription has been enclosed herewith.

Name : .....

Designation : ..... Qualification : .....

Subscription Year : 1 Year [ ] 2 Years [ ] 3 Years [ ]

Subscription Type : Individual [ ] Institutional [ ]

Delivery Address : .....

.....

Contact No. : ..... E-mail : .....

SUBSCRIPTION RATES

DURATIOON	INDIVIDUAL	INSTITUTIONAL	ROW (USD)
One Year	Rs. 500	Rs. 600	$ 50
Two Year	Rs. 900	Rs. 1100	$ 75
Three Year	Rs. 1200	Rs. 1500	$ 100

Note :

1. Subscriptions are available for a whole volume (June & Dec.) only.
2. No cancellations are permitted.
3. Claims for missing issues can be made only within 45 days of publication date.
4. All legal disputes subject to Jabalpur Jurisdiction only.

SUBSCRIPTION ADDRESS

Subscription Manager
Emerging Research Journal
Jabalpur Public College
49, Karmeta Patan Road, Jabalpur
Madhaya Pradesh Pin-482002
erj.jpc@gmail.com
Cont : 0761-2688838, 9425154312

Get it photocopied for more subscription